भारतीय साहित्य के निर्माता

नरेन्द्र शर्मा

हरिमोहन शर्मा



नरेन्द्र शर्मा

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ--रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

नरेन्द्र शर्मा

हरिमोहन शर्मा

साहित्य अकादेमी

Narendra Sharma : A monograph in Hindi by Hari Mohan Sharma on the modern Hindi writer. Sahitya Akademi, New Delhi (2005), Rs. 25.

प्रथम संस्करण : 2005

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग, स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर 560 001

चेन्नई कार्यालय

मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(304)
अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

ISBN 81-260-2054-7

मूल्य : 25 रुपये

शब्द संयोजक एवं मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

अनुक्रम

1

युग-परिवेश

आधुनिक हिन्दी साहित्य में छायावाद के उत्कर्ष के आसपास हिन्दी कविता में एक और काव्यधारा समानांतर रूप से प्रवाहित होती दिखाई देती है जो अपनी प्रकृति में छायावाद की भाँति स्वच्छंदतावादी है परंतु अपने रंगरूप में तथा प्रभाव और महत्त्व की दृष्टि से छायावाद से भिन्न है। इसे कुछ विद्वानों ने उत्तरछायावादी कविता कहकर छायावाद के तुरंत बाद आने वाली कविता के रूप में विवेचित किया है तो कुछ इसे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा कहकर एक अलग काव्य-प्रवृत्ति मानते हैं। कुछ विद्वान् इसे 'हालावाद' या 'प्रेम और मस्ती' की कविता कहकर छायावाद और प्रगतिवाद के बीच पड़ने वाली हल्की-फुल्की काव्यधारा मान इसके महत्त्व को कम करके आँकने का प्रयास करते हैं। कुछ भी हो, एक बात सर्वमान्य है कि यह कविता छायावादी काव्य संस्कारों से प्रभावित है तो साथ ही उससे भिन्न रंगरूप लिए हुए है। दूसरे, ये उपर्युक्त सभी नाम इस काव्यधारा की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व तो करते हैं किन्तु उसे पूरी तरह परिभाषित नहीं करते। नरेन्द्र शर्मा इसी काव्यधारा के एक प्रमुख कवि-गीतकार हैं। इनके काव्य-संस्कारों का निर्माण छायावादयुगीन काव्य-परिवेश में होता है, किन्तु ये सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से अधिक उद्वेलित होते दिखाई देते हैं।

छायावाद के उत्तरवर्त्ती समय के सामाजिक-राजनीतिक परिवेश को देखें तो यह राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यंत सक्रियता से भरा हुआ काल है। कुछ विद्वान इसे गाँधीयुग की संज्ञा देते हैं। जैसा कि सर्वज्ञात है कि महात्मा गाँधी सन् 1914 ई. में दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटे। देश-काल की नब्ज़ पहचानने के लिए उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया। भारतीय जनता को एक ज़मीनी नेता मिला और क्रमश: भारतीय राजनीति अर्थात् स्वाधीनता आंदोलन की बागडोर उनके हाथ में आ गई। महात्मा गाँधी के प्रयासों से स्वाधीनता आंदोलन की लहर देश के कोने-कोने में पहुँच जाती है। देश की जनता में स्वाधीनता का लक्ष्य प्राप्त करने की ललक पैदा हो जाती है। भारत में एक अभूतपूर्व जागृति का युग जन्म लेने लगता है तथा देश अनेक प्रकार की हलचलों से भर जाता है। उसी अनुपात में ब्रिटिश सरकार सबक़ सिखाने के लिए देश में अपना दमन-चक्र चलाती है। इस

समय स्वाधीनता का लक्ष्य लौकिक, अधिक मूर्त्त और जन सामान्य के जीवन से अधिकाधिक जुड़ा हुआ दिखाई देता है। हालाँकि देश की आज़ादी प्राप्त करने के तरीक़ों को लेकर देश के नवयुवकों और गाँधी जी के बीच असहमति का वातावरण था, फिर भी गाँधी देश की आत्मा से जुड़े रहते हैं। वे अपने कार्यों, अपने व्याख्यानों, अपने लेखों में केवल राजनीति की बात नहीं करते; बल्कि कहें कि उनकी दृष्टि में समूचा भारतीय समाज, उसका राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जीवन, उसकी समस्याओं की जानकारी तथा उसके समाधान रहते हैं। इसलिए उनका प्रभाव राजनीति के पार जाता हुआ जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक क्षेत्रों पर भी पड़ता है। इसका यह अर्थ क़तई नहीं कि गाँधी इस युग के सर्वमान्य और एकमात्र नेता हैं। उनका कहीं कोई विरोध नहीं-यह सोचना एकांगी होगा।

कथनीय है कि गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस इस समय के महत्त्वपूर्ण नेता हैं। रूसी क्रांति के बाद उभरने वाली समाजवादी विचारधारा, पूँजीवादी-साम्राज्यवादी देशों में अपने निहित स्वार्थों को लेकर द्वंद्व, विश्वयुद्ध की स्थितियाँ बीसवीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक को विशिष्टता प्रदान करते हैं। देश के अंदर इस समय स्वाधीनता आंदोलन उग्र स्वरूप धारण करता चला जाता है। देश को स्वतंत्र कराने के लिए अनेकानेक रास्तों की खोज तथा उन पर चलने का आग्रह दिखाई देता है। मेरठ षड्यंत्र केस, दिल्ली विधानसभा में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त का बम फेंकना, 64 दिन की भूख हड़ताल के बाद लाहौर जेल में यतीन्द्र नाथ दास की मृत्यु, कांग्रेस के कराची अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए गाँधीजी द्वारा जवाहरलाल नेहरू का नाम भेजना, भगतसिंह आदि को फाँसी की सज़ा, सुधारों के विषय में गाँधी-इरविन समझौता, पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को घोषित करना तथा बाद में कांग्रेसी मंत्रिमंडल की नीतियों के प्रति असंतोष और साथ ही किसान-मज़दूरों के संगठन पर बल देने वाले वामपंथ का प्रभावशाली होते चले जाना-ये इस काल खंड की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं।

छायावाद के तुरंत बाद आने वाले कवियों की मानसिकता पर इन घटनाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यही कारण है कि छायावादी काव्यसंस्कार ग्रहण करने के बावजूद छायावाद परवर्ती इन कवियों में यथार्थ का आग्रह बढ़ता जाता है। यहीं ये छायावादी कविता से स्वयं को अलगाने का प्रयास करते हैं। अध्यात्म और दर्शन का लबादा उतारकर ज़माने की परवाह न करते हुए ये मस्ती और फक्कड़पन का परिचय देते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि इस युग के ऐसे कवि हैं जो सहज-सरल भाषा में अपने रूमानी भाव व्यक्त करते हैं तथा कवि-सम्मेलनों में जाकर हज़ारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने में समर्थ होते हैं। सहज-साधारण मनुष्य को काव्य-वस्तु के रूप में अपनाने वाले इन कवियों में जहाँ एक ओर रूमानीपन है, वहीं युग का आग्रह भी है। दिनकर ने इस युग

की आहट को स्वीकारते हुए अपने एक महत्त्वपूर्ण काव्यसंकलन *चक्रवाल* की भूमिका में इसे इस प्रकार लिखा है :

> "उस समय सारा देश उत्साह से उच्छल और दासता की पीड़ा से बेचैन था। अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज़ आती, फाँसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज़ सुनाई देती जो गाँधी जी के हृदय में चल रही थी, जिससे बढ़कर मैं और किसी को अपना श्रद्धेय नहीं समझता था। मेरे जानते उस समय सारे देश में एक स्थिति थी, जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी, सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वातंत्र्य-संग्राम को सबल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी।"

स्पष्ट है कि संपूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य इस समय अधिक स्पष्ट और समीप आता दिख रहा था। बीच-बीच में असफलताएँ और निराशाजनक स्थितियाँ भी आती थीं और दूर हो जाती थीं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास से समाज में नई जागृति का प्रवेश भी हो रहा था। रूसी क्रांति और मार्क्सवाद की समझ पढ़े-लिखे नवयुवकों में बढ़ रही थी। समाजवादी विचारों को ग्रहण करने वाले जवाहरलाल नेहरू उनके स्वाभाविक नेता, उनके हृदय-सम्राट बन रहे थे। इसप्रकार भारतीय जनमानस में यथार्थपरकता और कल्पनाशीलता ऊपर-ऊपर से परस्पर विरोधी लगते हुए भी जीवन-जगत के प्रति एक नई समझ पैदा करते हैं। इस सबसे संवेदनशील रचनाकार प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था। उस समय के साहित्य में एकाधिक प्रकार की मनःस्थितियाँ झलकती हैं। एक-रचनाकार के युगीन संघर्ष से जुड़ने और सामान्यजन के साथ खड़े होने की आकांक्षा, दूसरे-परिवर्तन और क्रांति के भाव, तीसरे-जनमानस से दूर एकांत में भटक जाने की विवशता। यही एकांत में भटक जाना उन्हें रूमानी कविता लिखने के लिए प्रेरित करता है।

प्रेम की पुकार तो छायावादी कवियों ने भी खूब मचाई है। उसमें उनकी ऊष्मा को भी महसूस किया जा सकता है परन्तु उनपर कुछ ऐसे दबाव अवश्य काम कर रहे थे कि वे खुलकर स्वस्थ रूप से अपनी प्रेमाभिव्यक्ति नहीं कर पा रहे थे। इसीलिए दिनकर को छायावादी नारी-भावना कुंठित लगती है-"यौन वासना द्विवेदी युग से दमित चली आ रही थी। छायावादी काल में आकर वह फूटी तो अवश्य, किन्तु, इस प्रकार नहीं, जिसे हम स्वाभाविक कह सकें। छायावादियों की वासना उन्हें कुरेदती भी है और अपनी अधीनता में भी ले जाती है, किन्तु, ये कवि बराबर यह कहते रहते हैं कि यह हमारी वासना भले ही हो किन्तु, हमने उसे गंगा में नहला दिया है।" जबकि बाद के इन कवियों में प्रेमभावना का अपेक्षाकृत स्वच्छंद एवं स्वाभाविक प्रवाह मिलता है जो अपने प्रेम

के मांसल गीत गाने में सकुचाता नहीं। ऐसा करना उनकी मानसिकता का सहज हिस्सा है। समय की इन्हें यही देन है। यही इन्हें छायावादी कवियों के भाव-संसार से अलग करता है। इनके यहाँ प्रेम के आकुल अंतर की पुकार है तो कहीं वासना, अतृप्ति और बेचैनी। यहाँ प्रेम का वह उदात्तीकरण नहीं मिलता जो छायावाद की प्रमुख विशेषता बनती है। भगवतीचरण वर्मा निर्द्वन्द्व भाव से कहते हैं :

हाँ, प्यार किया है प्यार किया है मैंने

बालकृष्ण शर्मा नवीन तो प्रेमाभिव्यक्ति के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देते हैं :

यों भुज भरके हिये लगाना है क्या कोई पाप?
या अधखिले दृगों का चुंबन है क्या पाप कलाप?

कह सकते हैं कि युवामन की नाना अनुभूतियाँ अपने संपूर्ण वैविध्य के साथ इस काव्यधारा में व्यक्त हुई हैं। वह उसे कहने में कोई दुराव-छिपाव नहीं रखना चाहता। यही इनके फक्कड़पन का प्रमाण है। किन्तु सामाजिक परिवेश की निराशा और असफलता इनमें से कुछ कवियों को हताश और मरणोन्मुखी वृत्तियों की ओर भी ले जाती है–जिन्हें देखकर कुछ विद्वानों ने इन सभी को क्षयी रोमांस का कवि भी मान लिया है। पर यह इन कवि-गीतकारों का स्थायी भाव नहीं। यह अधिकांश में असफल या अतृप्त प्रेम की निराशा है जो परिवेशजनित अधिक है।

ध्यातव्य है कि ये सभी रचनाकार कहीं-न-कहीं देश-काल से बँधकर अपनी काव्य-रचना में प्रवृत्त होते हैं। अधिकांशतः ये सामाजिक जीवन में भागीदारी करते हुए कर्मठ देशभक्त और समाजसेवी की भूमिका निभाते हैं। इनमें से कुछ स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी करते हुए कष्ट, अभाव और कारावास का दंड तक भोगते हैं। उदाहरणार्थ नरेन्द्र शर्मा अपनी प्रगतिशील विचारधारा के कारण ब्रिटिश सरकार की आँख की किरकिरी बनते हैं तथा दो साल के लिए देवली कैम्प जेल में डाल दिए जाते हैं। ये एक ओर वैयक्तिक अनुभूतियों से युक्त हो प्रेमगीत लिखते हैं तो दूसरी ओर सामाजिकता के आग्रह के कारण अपने देश-समाज के प्रति अपना कर्तव्य-निर्वाह करते हुए सामान्य जन जीवन को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। गगन बिहारी कल्पना अब नीचे उतर आती है। वर्तमान से असंतोष, यथार्थ से उत्पन्न अभाव-अतृप्ति इनकी कविता के मुख्य विषय बनते हैं। ऐसे में द्वंद्व की तीव्रानुभूति इनके गीतों में झलकती है। छायावादी कवि तो प्रकृति के साहचर्य से नवीन संसार एवं निर्व्याज सौन्दर्य की सृष्टि कर लिया करते थे पर इन कवियों को प्रकृति में भी वैसा संतोष नहीं मिलता। विषाद में घिरे हुए इन कवियों ने वहाँ भी अपनी अतृप्तियों का खुलकर प्रकाशन किया है। यहीं इसी बिन्दु पर ये कवि छायावादी कविता से अलग हो

जाते हैं। यथार्थकामी तो कहीं-कहीं छायावादी कवि भी थे परन्तु असली बात तो संस्कारों की है। उत्तरछायावादी कवियों को छायावादी कल्पना, भावप्रवणता, सौन्दर्य सभी अच्छा लगता था। परन्तु इनके भाव-संसार जीवन संघर्ष और भौतिक विघ्नबाधाओं से भी जुड़े हुए थे, जिसके कारण विविधमुखी अनुभूतियों से संपन्न इनकी कल्पनाशक्ति भी अधिक खुली और प्रत्यक्ष हो गई थी। यह जनमानस की अनुभूति से बहुत दूर नहीं थी। फिर कवि ने उसे अकृत्रिम रूप में जिस प्रकार गा दिया, वह जनमानस के लिए अपूर्व एवं अद्वितीय था। वैसे भी इन कविताओं की कोमलता छायावादी कविताओं की कोमलता से किसी भी तरह कम नहीं थी। बस, अंतर इतना रहा कि छायावादी कविता की कोमलता जीवन की रुक्षताओं से अलग रहकर उपलब्ध की गई थी जबकि इन कविताओं की कोमलता जीवन-संघर्षों के बीच अवकाश के क्षणों से ही निकली हुई है। द्रष्टव्य है कि इनकी कविताओं में कल्पना और वास्तविकता का यह द्वंद्व इस पूरी काव्यधारा में मिलता है।

विद्वान आलोचकों ने इनकी इस प्रवृत्ति को विश्लेषित करते हुए इसके सूत्र युग-जीवन में ढूँढ़ने के प्रयास किए हैं। प्रेम में अतृप्ति, बेचैनी एवं असंतोष तथा सामाजिक-राजनीतिक आग्रह-इनकी रचनाशीलता का यह द्वंद्व युगीन मानसिकता के बदलाव, हृदय की रिक्तता तथा मनोभूमि की तन्मय एकाग्रता खंडित हो जाने के कारण पैदा हुई है। हृदय और बुद्धि के बीच दरार स्पष्ट दिखाई देने लगती है। अपनी रोमानी प्रवृत्ति के कारण ये जीवन की वास्तविकताओं से जूझने की बजाय उससे किनारा कर विश्लेषण पर अधिक ध्यान देने लगते हैं। नरेन्द्र शर्मा अपने प्रसिद्ध काव्यसंग्रह *प्रवासी के गीत* की भूमिका में इसका विस्तृत उल्लेख करते हैं। पुस्तक के प्राय: सभी गीतों में प्रेमाग्नि की जलन और रुदन, प्रेमी की सुधि और पुराने क्रियाकलापों का स्मरण या कहीं-कहीं मिलनातुरता के चित्र भी उपस्थित हुए हैं अन्यथा सर्वत्र पीड़ा की सघनता एवं उसके विविध रूपों के दर्शन ही अधिक होते हैं। संग्रह में शायद ही एकाध गीत ऐसा हो जिसमें कवि अपनी परिवेशगत निराशा को अभिव्यक्ति देता हो। परन्तु 'वक्तव्य' में उसके चिन्तन का विस्फोट होता है। वह अपनी और जिसके लिए कविता लिखता है उसकी परिवेशगत स्थिति और मनोदशा का सूक्ष्म विश्लेषण करता है और बताता है कि उसकी निराशा का कारण क्या है?-"ब्रिटिश सत्ता के कारण हमारे समाज में वर्गीकरण कुछ ऐसे ढंग से हुआ कि कवियों तथा अन्य साहित्यिकों को किसी भी वर्ग में स्थान नहीं मिल सका। ब्रिटिश सत्ता के स्तंभ उच्च राजकर्मचारी, ऊँचे पेशे वाले (बड़े वकील, डॉक्टर, इंजीनियर) थोक माल ख़रीदने और बेचनेवाले व्यवसायी और व्यापारी, राजा और नवाब, बड़े ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार, ये सब आज के उच्चवर्ग में शामिल हैं। इनकी शिक्षा, संस्कार और जीवनचर्या इन्हें, इस योग्य नहीं रहने देते कि ये हमारे साहित्य की ओर कृपा-कटाक्ष कर सकें।

मध्यवर्ग, जिसमें बेकार शिक्षितों और कवियों और लेखकों की भी गणना होनी चाहिए, के अंतर्गत अदालती अहलकारों की श्रेणी से लेकर उच्चवर्ग की ओर ऊर्ध्वमुख किन्तु अपने सौभाग्य के कारण अंशतः स्वयं संतुष्ट सफल सांसारिक आते हैं। स्पष्ट है कि इन छिछले सांसारिक जीवों के बीच साहित्यिकों के लिए कोई स्थान नहीं। तब क्या कवियों के इंद्रधनुषी स्वप्नों और आध्यात्मिक आकाशकुसुमों के गुणग्राहक अकिंचन, पददलित, प्राकृत जनता में मिलेंगे, जब कि हमारी जनता को गला घोंटने वाली गरीबी और गुलामी के भार से साँस लेने तक की फुरसत नहीं? मध्यवर्ग के लोग जीवनयापन तो कर सकते हैं, संस्कृति और साहित्य से विमुख रहकर ही सही; हमारी जनता को तो जीवित रहने के लिए भी जी-जान से कोशिश करनी पड़ती। और सब वर्ग उसी के शोषण पर निर्भर हैं! हमारे लेखक और कवि भी शोषक वर्ग के ही व्यक्ति हैं। अपने वर्ग में उनके लिए स्थान नहीं है तो इसका यह अर्थ नहीं कि उनके संस्कार और उनकी जीवनचर्या मनोवृत्ति वर्गगत नहीं है। जनता के लिए वे दुरूह हैं। जनता उनके अस्तित्व से भी अनभिज्ञ है। जनता में उनके गुण-ग्राहक कहाँ मिलेंगे? ऐसी अवस्था में कवियों का निराशावादी हो जाना स्वाभाविक था।" यह केवल कवि नरेन्द्र शर्मा के संस्कारों का विरोधाभास नहीं, यह उस युग का विरोधाभास है जिसे नरेन्द्र ने स्पष्ट किया है। अन्यत्र भी इसके कारणों का खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा है : "मैं अपने आपको और समाज को बदलने के लिए लालायित था। बुद्धि से मैं समझता था कि मैं केवल वह नहीं हूँ जो इन कविताओं के माध्यम के रूप में अभिव्यक्त हूँ। मैं देश-राष्ट्र का नागरिक भी हूँ। समाज की गतिविधि को समझने वाला चिन्तक और विचारक भी हूँ। व्यक्ति के रूप में मेरी उत्क्रांति संभव है और सामाजिक क्रांति में योगदान करना भी मेरे लिए संभव है। उन्हीं संभावनाओं को मेरी बुद्धि ने देखा और मुझे दिखाया। अनुभूति की अभिव्यक्ति मेरी कविताओं में है और भूमिका में है बुद्धि-साध्य विश्लेषण का निष्कर्ष।" (*ज्योतिकलश*, पृ. 427) स्पष्ट है कि ये कवि इतिहास के जिस दौर से गुज़र रहे थे वहाँ युवा कवियों का अपने युग से प्रभावित होना स्वाभाविक था। स्थितियाँ, समस्याएँ, युगीन संघर्ष इनके मानस का निर्माण कर रहे थे। हृदय एक ओर खींच रहा था और बुद्धि दूसरी ओर। यह द्वैत या द्वंद्व ही इनकी पहचान है। इसे मध्यवर्ग की मानसिकता का प्रमाण भी कहा जा सकता है। इसीलिए इनमें अनेक प्रवृत्तियाँ होने के कारण इनका कोई एक समग्र व्यक्तित्व उभर कर नहीं आ पाता। इनके विषय में टिप्पणी करते हुए कवि भारतभूषण अग्रवाल ने उचित ही लिखा है : "ये स्वच्छंदतावादी भी हैं, राष्ट्रीयतावादी भी हैं, विद्रोही भी हैं और फक्कड़ भी, समाजसेवी भी हैं और व्यक्तिगत कामनाओं से ग्रस्त भी। एक वाक्य में वे अपने समय के मध्य वर्ग के बड़े ईमानदार प्रतिनिधि हैं।" ☐

2

जीवन : व्यक्तित्व और कृतित्व

नरेन्द्र शर्मा का जन्म 28 फ़रवरी, 1913 ई. में गाँव जहाँगीरपुर, परगना ज़ेवर, तहसील खुर्जा, ज़िला बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। कहा जाता है कि इनके पूर्वज जमुना पार से आए थे। वे स्वामी कहलाते थे। जो ब्राह्मण गृहस्थ जीवन में रहकर साधना करते थे, स्वामी कहलाते थे। इनका परिवार बहुत बड़ा था। घर बाहर के सब लोगों को मिलाकर प्रतिदिन इनके यहाँ सौ लोगों का भोजन बनता था। अपने परिवार का परिचय देते हुए *आधुनिक कवि* में नरेन्द्र जी लिखते हैं : "गाँव में हमारा सहकुटुंब सदस्य-संख्या में बड़ा और संपन्न गिना जाता था। मेरे जन्म से लगभग नौ वर्ष पहले, हमारे घर में डाका पड़ा था। गाँव के ज़मींदार का कारिन्दा मेरे पिता से अदावत रखता था। उसी ने गूजर डाकुओं को हमारे घर पर छापा मारने की दावत दी थी। उन दिनों डाकू लोग ब्राह्मण के घर डाका न डालते थे, लेकिन हमारी हवेली दिखाकर उन डाकुओं को मेंहदी अली कारिन्दे ने बहकाया और लहकाया था। डाके का परिणाम हमारे परिवार की अपेक्षा डाकुओं के लिए ही अधिक घातक सिद्ध हुआ। हाँ, मेरे बूढ़े दादाजी को अवश्य ख़ूब मार पड़ी थी, क्योंकि उन्होंने भी ख़ूब हाथ चलाए थे। पिताजी, जिनसे कारिन्दे की दुश्मनी थी, उस रात खुर्जा गए हुए थे; गाँव में न थे। मेरे दादा, जो अध्यापक से पटवारी बने थे, तब तक अवकाश ग्रहण कर चुके थे, पर तब तक उनके तीनों कमाऊ बेटे पटवारी नियुक्त हो गए थे। मेरे पिता गाँव के पटवारी थे और उनके दोनों बड़े भाई आसपास के गाँवों के। उन्हें कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे, जैसे ज़मीन-जायदाद रखना, लेन-देन करना, और हल्के से बाहर, अपने घर पर रह सकना।" (पृष्ठ 14)

इनके पिता तीन भाई थे। इनके पिता सबसे छोटे थे। पहले के यहाँ एक बेटा था, दूसरे के यहाँ तीन बेटियाँ थीं। तीसरे के यहाँ ओंकार और नरेन्द्र–दो बेटे। इनके पिता श्री पूरनलाल गौड़ की पहली पत्नी से बालक ओंकार का जन्म हुआ था। जन्म के बाद उनकी माता चल बसीं। परिवार वालों के आग्रह पर उन्होंने बच्चे के पालन-पोषण के लिए श्रीमती गंगादेवी से विवाह किया। उन्होंने भी

अपने सौतेले बेटे को पूरा स्नेह-सम्मान दिया तथा जब वे बारह वर्ष के हो गए तभी नरेन्द्र जी को जन्म दिया। पिता ने अपने बड़े भाई को, जिनके यहाँ सिर्फ़ बेटियाँ थीं, उनके कहने पर नरेन्द्र को उन्हें गोद दे दिया। ताऊ ही इनके पिता, गुरु और मार्गदर्शक बने। ये प्रारंभ से ही अपने ताऊ के संरक्षण में पले, बढ़े। घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था हुई। इनका नाम नरेन्द्र कैसे पड़ा—लिखते हैं : "मेरे जन्म के समय मेरे एक जीजाजी वहाँ आए हुए थे। वह साहित्यिक उपन्यासों के प्रेमी थे। उनकी रुचि के किसी उपन्यास का नायक नरेन्द्र रहा होगा। उन दिनों के उपन्यासों में नरेन्द्र नाम बहुत चलता था। सो उन्होंने मुझे यह नाम दे दिया। यों मुझे नाम-धाम मिल गया।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 13)

ये अपने ताऊ के बहुत लाड़ले-दुलारे थे। वे इन्हें हमेशा अपनी आँखों के सामने रखना चाहते थे। विद्याध्ययन के लिए उन्होंने गाँव की पाठशाला में इन्हें बहुत देर से भेजा। एक तरह से घर पर रहकर इनके विद्याध्ययन-कार्य का प्रारंभ हुआ। कवि ने स्वयं कहा है : "मुझे प्रथम अक्षर-ज्ञान देने वाले पंडित भी पटवारी ही थे, जो बंदोबस्त के कामकाज के लिए मेरे पितृव्यों के साथ उन दिनों बुलंदशहर में ही रहते थे। वहीं मुझे किठकिन्ना और किंडरगार्टन के सेट के सहारे अक्षरबोध कराया गया।

अक्षरज्ञान के बाद मैं *बाल सत्यार्थ प्रकाश* पढ़ने लगा। बचपन में मुझे आर्यसमाज के संस्कार मिले। उन दिनों मैंने महीनों नित्य पारिवारिक प्रात:होम में (बिना हाथ जलाए) भाग लिया है और वेदमंत्रों की ध्वनि (उच्चारण-संदिग्ध, अर्थ-अज्ञात) को गुँजाया है। साथ ही, 'भरद्वाजगोत्रोत्पन्नोऽहम्' कहना भी सीख लिया था।

हमारे घर पर साप्ताहिक समाचार-पत्र *प्रताप* आया करता था। इसलिए मुझे बचपन में ही देशभक्ति का यह प्रेरक मंत्र मिल गया था :

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नर पशु निरा है, और मृतक समान है।'

हो न हो इसी मंत्र का प्रभाव रहा हो कि बचपन में मैं एक बार बच्चों की टोली बनाकर, हाथ में पैमाइश की झंडी लिए (उसे ही देश का झंडा समझकर) गाँव के बाहर पुलिस चौकी को ललकार आया था। पुलिस के डर से तो नहीं, पर गाँव के प्रधानाध्यापक के भय से घबराकर मैंने मन ही मन मनाया कि महात्मा गाँधी अवतार हैं, तो पाठशाला में पिटूँगा नहीं और ज़रूर उस वर्ष पास हो जाऊँगा। मैं पिटा नहीं और दर्जा चार में पास भी हो गया।" (*आधुनिक कवि*, पृष्ठ 14-15)

स्पष्ट है कि इनका परिवार आर्यसमाजी था। वैसे भी राष्ट्रीय आंदोलन के दिन थे। नरेन्द्र पर बचपन से ही सामाजिक सुधारों का प्रभाव पड़ा और राष्ट्रीय

चेतना का विकास हुआ। रूढ़ि-मुक्ति इसी समय से इनके स्वभाव का अंग बन गया था। थोड़े समय पश्चात् इनके पिता का देहांत हो गया। किन्तु इन्होंने अपने ताऊ जी की बदौलत उस दु:ख को झेल लिया। इनकी एक छोटी बहन भी थी। उम्र में इनसे दो-तीन वर्ष छोटी। उसका नाम था परमेश्वरी। स्वभाव से शांत, बहुत गोरी और सुनहले बालों वाली। किन्तु दुर्भाग्य! सात वर्ष बाद वह भी इन्हें छोड़ कर चल बसी। इस सबका असर इनके बालमन पर पड़ा। पिता को स्मरण करते हुए अपने अंतिम काव्यसंग्रह के समर्पण में कवि ने लिखा है : "पिता कब महानिद्रा में लीन हुए, इसका न ज्ञान है, न स्मरण ही। पितृव्यों के द्वारा बालक का लालन-पालन इतने लाड़-प्यार से होता है कि उसे पिता के अभाव का भान ही नहीं हो पाता। उसने स्वयं को पितृहीन बालक कभी समझा नहीं। पितृव्यों तथा संयुक्त परिवार के अनेक सदस्यों के लाड़प्यार में पले बालक का, अपने इतिहास का यह तथ्य कि वह पितृहीन है, प्रभावित नहीं करता। लेकिन व्यक्ति के इतिहास का तथ्य भी एक ऐतिहासिक तथ्य ही माना जाएगा। इसलिए याद के इस छोर पर खड़ा हुआ मैं अपने दिवंगत पिता की याद में उन्हें श्रद्धा सहित अपना यह कविता संग्रह समर्पित करता हूँ।" (*शेष-अशेष*, संपा. इंद्रबहादुर सिंह, पृष्ठ 38)

शिक्षा

पिता की मृत्यु के बाद बालक नरेन्द्र की औपचारिक शिक्षा पर ध्यान दिया जाने लगा। इन्होंने अन्य विषयों के साथ अँग्रेज़ी की पढ़ाई प्रारंभ कर दी। इसके अच्छे परिणाम हुए। इन्हें उसी वर्ष खुर्जा के जे.ए.एस. हाई स्कूल की स्पेशल पाँचवीं क्लास में दाख़िला मिल गया। सन् 1929 ई. में इन्होंने वहीं से हाई स्कूल की परीक्षा पास की। इससे पहले ये हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा पास कर चुके थे। इससे इन्हें छंदों का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो गया था जो क्रमश: बाद में इनके काम आया। उस समय का स्मरण करते हुए अपने 'आत्मकथ्य' में नरेन्द्र शर्मा लिखते हैं : "होश सँभालते ही, मुझे समाज-सुधार की धुन लगी। साथ ही, राजनीतिक चेतना भी थी। इस विषय में जानकी प्रसाद एंग्लो-संस्कृत हाई स्कूल, खुर्जा के तत्कालीन हैडमास्टर साहब श्री लक्ष्मीनारायण माथुर मेरे आदर्श थे। वह मेरे पूज्य हैं। मैं उनका प्रिय छात्र था। हाई स्कूल के अंतिम वर्ष में मैं ज़िले की नौजवान भारत-सभा का मंत्री था। इंटर कॉलेज भी खुर्जा में था, जिसे छोड़ते समय मैं कविता की ओर झुका, जिसकी प्रेरणा मुझे मेरे तत्कालीन अंग्रेज़ी के प्राध्यापक श्री महेशप्रसाद शुक्ल से मिली। वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे और महादेवी जी और पंत जी की कविताओं के प्रेमी थे। इन दोनों की कविता मेरे लिए प्रेरणास्रोत बनी। इंटर कॉलेज में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक और भी पूर्वछात्र थे, जो अच्छे वक्ता और राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक थे। मैं दोनों

प्राध्यापकों की परोक्ष प्रेरणा से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में गया।" (*ज्योतिकलश, नरेन्द्र शर्मा अभिनंदन ग्रंथ*, पृष्ठ 444) वैसे भी उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय उच्चशिक्षा तथा हिन्दी साहित्य की सृजनात्मक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन रहा था। सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा वहीं रहकर साहित्यसृजन कर रहे थे। निराला, भगवतीचरण वर्मा वहाँ आते-जाते रहते थे।

इन्होंने सन् 1931 ई. में यहीं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में आकर बी.ए. में प्रवेश लिया। इन्हें हिन्दू बोर्डिंग हाउस (अब मालवीय छात्रावास) में स्थान मिला। वीरेश्वर, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह जैसे सहपाठी इसी छात्रावास में थे और कविता में रुचि रखते थे। केवल रुचि ही नहीं, ये एक-दूसरे को कविता-सृजन के लिए प्रेरणास्रोत का काम करते थे। ये महीने में एक दिन महीने भर में लिखी गई कविताएँ सुनते-सुनाते थे। बताया जाता है कि सबसे अधिक और सबसे सहज ढंग से कविताएँ नरेन्द्र शर्मा लिखा करते थे। केदारनाथ अग्रवाल भी कम से कम तीन कविताएँ अवश्य तैयार कर लेते थे। शमशेर भी दो-तीन कविताएँ लिख लेते थे। छात्रावास-जीवन के प्रारंभ का स्मरण करते हुए केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं : "यह मेरे लिए तब भी अचरज का विषय था और अब भी अचरज का विषय है कि कैसे कोई कवि एक-एक दिन या एक-एक रात में कई-कई कविताएँ या गीत लिख लेता है। मैं तो महीनों कोई कविता नहीं लिख पाता था और अब भी नहीं लिख पाता हूँ। कविता मेरे लिए कभी भी सहज नहीं रही। तमाम तरह के मानसिक तनाव झेलने पड़ते थे, तब मुझसे कहीं कोई कविता बन पाती थी और उसके बन जाने पर भी मुझे संदेह ही बना रहता था कि वह अच्छी हो या ना हो। लेकिन नरेन्द्र थे कि कविताएँ और गीत बड़ी जल्दी और धड़ल्ले से लिख लेते थे। और यही नहीं, लिख लेने के बाद, हम लोगों को बड़े सुख से सुनाते थे और मैं देखता था कि उन्हें अपनी कविताओं के बारे में ऐसा कोई संदेह नहीं होता था जैसा मुझे, बड़ा आत्मविश्वास था उन्हें अपने और अपनी कविता के ऊपर। भावुक तो वे बहुत ही थे। मैं तो उनके मुकाबले में बहुत कम भावुक था। मेरे मित्र शमशेर तो कविता के गुणों से ख़ूब वाक़िफ़ थे ही और फिर जब वे नरेन्द्र को सस्वर हम लोगों के बीच हर्ष से कविता सुनाते देखते थे तो मंत्र-मुग्ध रह जाते थे और उनकी कविताओं की सराहना करते नहीं अघाते थे।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 15) ठाकुर वीरेश्वर सिंह, जो बाद में *माया* के संपादक हुए उनका इन सब साथियों पर थोड़ा ज़्यादा ही रोब गालिब रहता था क्योंकि वे सुभद्राकुमारी चौहान के मौसेरे भाई थे। इसका विवरण देते हुए शमशेरबहादुर सिंह लिखते है : "एक दफ़े जब सुभद्रा जी इलाहाबाद में आई हुई थीं, तो वीरेश्वर सिंह हम लोगों को उनसे मिलाने ले गए थे। हम लोगों ने अपनी कविताएँ उन्हें सुनाई थीं और जहाँ तक मुझे याद है, सुभद्राजी ने भी अपनी दो-एक कविताएँ

सुनाने का अनुग्रह किया था। वे बहुत कम बोलती थीं, स्वभाव से सरल और गंभीर थीं। उनका पहला काव्यसंग्रह *मुकुल* उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था। हम सब लोग उसे पढ़ चुके थे, देख चुके थे। *मुकुल* की कविताओं में सहज अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय भावना का मेल था।" (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 81)

साहित्य-सृजन

निःसंदेह इलाहाबाद आकर नरेन्द्र शर्मा के कवि-जीवन का विकास हुआ। कविता के लिए उर्वर भूमि और अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ। 1931 ई. में इनकी पहली कविता चाँद में छपी। इसी समय स्वराज भवन, प्रयाग में स्वदेशी मेला लगा। श्री सुमित्रानंदन पंत वहाँ आए थे। यहीं नरेन्द्र की पंत जी से पहली मुलाकात हुई। कविता के बीज-वपन-काल में जिनकी प्रेरणा से कविता के प्रति प्रबल आकर्षण पैदा हुआ था, उनके दर्शन करने का इन्हें अवसर प्राप्त हुआ। 'एक सौम्य व्यक्तित्व सुलभ हो गया। थोड़े दिन बाद महादेवी जी से भी परिचय हो गया, तो जिन कवियों ने कविता-रचना की प्रेरणा दी थी, उनसे साक्षात्कार हुआ। मिलना-जुलना साथ उठना-बैठना प्रारंभ हुआ। जीवन में गति आई।' (वही, पृष्ठ 71) इलाहाबाद में अन्य साहित्यकारों से भी इनका परिचय होता चला गया। विशेष रूप से भगवतीचरण वर्मा से जो उन दिनों इलाहाबाद में वकालत करते थे और भदारी राज्य के 'लीगल एडवाइज़र' थे। वे उन दिनों *चित्रलेखा* का लेखन कर रहे थे। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से इन्हें बहुत लाभ हुआ। इस प्रकार इलाहाबाद में इनकी कविता पनपने लगी। ये नियमित कविता-लेखन करने लगे। इनके प्रारंभिक काव्य-लेखन का उल्लेख करते हुए पंत जी लिखते हैं : "मैं सन् 1931 में कालाकांकर में रहने लगा था और नरेन्द्र वहाँ एक-दो बार मुझसे मिलने आया था और दो-एक दिन मेरी कॉटेज 'नक्षत्र' में मेरे ही साथ ठहरा था। तब वह भावुक किशोर नवयुवक कवि बन गया था, और उसकी किशोर प्रणय के आवेग से भरी अनेक रचनाएँ, जो पीछे संग्रह के रूप में प्रकाशित भी हुईं और प्रथम संस्करण के बाद लुप्त भी कर दी गईं--तब मैंने पढ़ी थीं और उनमें अभिव्यक्त नववयस के सद्यःप्रणय के सौन्दर्य का रस भी पान किया था।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 1)

सन् 1933 ई. में इनकी एक कविता *सरस्वती* में प्रकाशित हुई। *सरस्वती* उस समय की एक स्तरीय पत्रिका थी। उसकी प्रामाणिकता सर्वमान्य थी। इससे इन्हें व्यापक पहचान मिली। इनके स्कूल के हेडमास्टर श्री लक्ष्मीनारायण माथुर तो निश्चित थे कि यह और कोई नहीं उनका अपना नरेन्द्र ही है। पहले तो किसी को विश्वास नहीं हुआ बाद में छुट्टियों में घर आने पर इस बात की पुष्टि हुई तो उन्हें बहुत खुशी हुई। इस तरह का प्रोत्साहन नए कवियों को बहुत प्रेरणा देता है।

शीघ्र ही जागरूक, अध्ययनशील और भावुक कवि नरेन्द्र ने उदीयमान नए कवियों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। लोकप्रियता में इनका मुक़ाबला हरिवंशराय बच्चन से ही हो सकता था। वैसे भी दोनों पंत जी के प्रशंसक होने के नाते एक-दूसरे के समीप आ गए थे। उस समय का ज़माना गीतों की ओर बढ़ रहा था। नरेन्द्र के गीत लासानी थे। "नरेन्द्र और बच्चन, विशेषकर बच्चन नए कवियों के लिए 'टॉर्च लाइट' की तरह थे। उन्हीं के भाव और शैली को पकड़कर नई पीढ़ी आगे आ रही थी। लेकिन नरेन्द्र शर्मा ने अपनी शैली को बच्चन की शैली से अलग बनाकर प्रस्तुत किया। बच्चन अपनी कविताएँ तरन्नुम से पढ़ते थे, गुनगुनाते हुए से और काफ़ी ऊर्जा और शक्ति उनके काव्यपाठ में रहती थी।" वह जमाना लयदारी से कविता पढ़ने-सुनाने का था। उस समय का वातावरण ही कुछ ऐसा बन गया था कि कविता तुक-ताल-लययुक्त हो जाती थी। बल्कि यह कहें कि उस समय कविता में सुर-ताल पर ध्यान दिया जाता था जो अनुचित न था। काव्यगोष्ठियाँ होती थीं। ये नवोदित कवि पंत जी को कविता-गोष्ठी में बुलाकर लाते उन्हें जी भरकर कविताएँ सुनाते थे। धीरे-धीरे बच्चन की *मधुशाला* और नरेन्द्र के *प्रवासी के गीत* की अनेक रचनाएँ युवक-युवतियों के कंठहार बन गए थे। बरसों बाद बनारस में नरेन्द्र शर्मा की रचना '*तुम दुबली-पतली दीपक की लौ-सी सुंदर*' सुनकर निराला जी भी झूम-झूम उठे और बड़े वात्सल्य से उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा-'इन रचनाओं से तुम्हारी और पंत की प्रीति की प्रतीति हो गई, पर प्रणयगीत तुम उनसे अच्छे लिखते हो।' कहते हैं नरेन्द्र शर्मा के इन गीतों को देखकर ही निराला जी ने इन्हें पंत स्कूल का प्रतिनिधि कवि स्वीकार कर लिया था।

1933 ई. में इनकी पहली कहानी प्रयाग के *दैनिक भारत* में प्रकाशित हुई। 1934 ई. में इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकृति *यशोधरा* की समीक्षा भी लिखी जिसमें उनके कुछ दोषों का भी उल्लेख किया गया था। किन्तु समीक्षा प्रकाशन के बाद भी राष्ट्रकवि का स्नेह इन पर अंत तक ज्यों का त्यों बना रहा।

पत्रकारिता की दीक्षा इन्हें विद्यार्थीकाल से ही मिलने लगी थी। ये सन् 1934 ई. में प्रयाग से निकलने वाले *अभ्युदय* के संपादकीय विभाग में कार्य करने लगे थे। एम.ए. अंग्रेज़ी कर लेने के बाद सन् 1937 ई. में लीडर प्रेस से निकलने वाले *दैनिक भारत* (प्रयाग) में इन्हें उपसंपादकी की जगह मिल गई। इस समय तक इनके दो काव्य-संग्रह *शूलफूल* (1934 ई.) और *कर्णफूल* (1936 ई.) प्रकाशित हो चुके थे। इनमें से *शूलफूल* की भूमिका प्रो. अमरनाथ झा ने लिखी थी। 1938 ई. में नरेन्द्र शर्मा भारत छोड़कर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के केन्द्रीय कार्यालय में हिन्दी का कामकाज देखने के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू के द्वारा नियुक्त कर लिए गए। अब इनका कार्यस्थल स्वराज भवन, इलाहाबाद हो

गया। लगभग दो वर्ष तक नरेन्द्र शर्मा पं. जवाहरलाल नेहरू और कृपलानी जी के सान्निध्य में कार्य करते रहे। इनके सहयोगियों में तब केसकर जी, राममनोहर लोहिया जैसे लोग थे जो बाद में प्रसिद्ध राजनेता बने।

सन् 1938 ई. में कविवर सुमित्रानंदन पंत ने कुँवर सुरेश सिंह के आर्थिक सहयोग से नई सामाजिक-राजनीतिक आर्थिक स्पंदनों से युक्त *रूपाभ* नामक पत्र के संपादन करने का निर्णय लिया। इसके संपादन में सहयोग दिया नरेन्द्र शर्मा ने। उस समय का स्मरण करते हुए पंत जी ने लिखा है : "सन् 1938 में *रूपाभ* निकाला था और नरेन्द्र ने उसमें सहसंपादक के रूप में कार्यभार सँभालने की स्वीकृति दी थी। निस्संदेह इससे पहले हम लोग आपस में घुलमिलकर एक-दूसरे के काफी सन्निकट आ गए थे जिसमें बाहरी घटनाओं या परिस्थितियों से अधिक भीतर ही के परस्पर खिंचाव का हाथ रहा होगा। मैं तो *रूपाभ* का केवल हाथीदाँत की तरह दिखावे का संपादक भर था, वास्तविक कार्यव्यापार नरेन्द्र ही उसका सँभालता था। मैं दो-चार दिन को प्रयाग आकर नरेन्द्र के पास ही ठहरकर, उसके द्वारा प्रस्तुत की गई *रूपाभ* के अंकों की रूपरेखा देख भर लेता था। शेष सारा काम–कविता, लेख आदि के लिए पत्र-व्यवहार करना, ग्राहक बनाना, प्रेस में छपवाने का दायित्व, प्रूफ़ देखना आदि और भी अनेकों काम नरेन्द्र ही करता। . ...यह सब कितने झंझट का काम है और अकेले उसे निभा लेना और भी कितना कठिन है, यह भुक्तभोगी पत्रकार ही समझ सकता है। किन्तु हिरन से चंचल स्वभाव के नरेन्द्र ने यह सब यथासमय ठीक तरह से संपादित कर लिया। इससे उसके स्वभाव के दूसरे आयाम का पता चला।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 1-2) सन् 1938 ई. में ही उपर्युक्त दोनों संग्रहों की चुनी हुई कविताओं का संकलन *प्रभातफेरी* नाम से भारती भंडार से प्रकाशित हुआ। यौवन के दिन थे। उद्दाम भावावेग का प्रवाह था। नरेन्द्र का व्यक्तित्व प्रस्फुटित हो रहा था। कवि-मित्रों में हास्य-व्यंग्य निरंतर चलता रहता था। इसका निशाना कभी-कभी पंत जी भी बनते थे। किन्तु परिहास का लक्ष्य स्वस्थ मनोविनोद से अधिक कुछ नहीं होता था। नरेन्द्र के व्यक्तित्व के इस पक्ष को स्पष्ट करते हुए पंत जी ने लिखा है : "उसके हास-परिहास में कटुता, ईर्ष्या आदि का एकदम अभाव रहता था और निर्मल पहाड़ी निर्झर की तरह अपनी फेन-मुखर कल-कल के प्रवाह में बहता रहता था। दूसरा उसकी फब्तियों का निशाना शमशेर रहता, जो एकदम शायराना तबीयत का था और उसे *रूपाभ* के काम में छोटी-मोटी मदद कर दिया करता था। वह नरेन्द्र की कविताओं के साथ आकंठ स्नेह में डूबा उसका प्रशंसक था और गूँगे के गुड़ की तरह मन ही मन अपने स्नेह का स्वाद लेता रहता था।" उस समय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर अनेक हलचलें थीं, उथल-पुथल मची हुई थी। इस समय 1939 ई. में *प्रवासी के गीत* का प्रकाशन हुआ और 1940 ई. में *पलाशवन*. का।

1940 ई. का समय सारे विश्व के लिए भयानक त्रासदी का समय था। साम्राज्यवादी शक्तियाँ संसार को युद्ध की भट्ठी में झोंक चुकी थीं। दूसरी ओर सृजनधर्मी लोग विश्व का निर्माण न्याय, समता और मानवता के आधार पर करना चाहते थे। ऐसे समय में नरेन्द्र इलाहाबाद से काशी विद्यापीठ, बनारस में अध्यापक बन कर आ गए थे तथा राजनीतिक सत्याग्रहों में भाग लेने लगे थे। अतः अंग्रेज़ सरकार ने इन्हें राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के कारण नज़रबंद कर लिया। वहाँ से इन्हें आगरा सेंट्रल जेल भेजा गया तथा बाद में इन्हें अन्य नेताओं के साथ देवली कैम्प जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। यह जेल राजस्थान के एक सुनसान इलाक़े में बनाई गई थी जिससे कि कोई भी कैदी वहाँ से भागकर न जा सके। देवली जेल में इनके साथ राहुल सांकृत्यायन, जयप्रकाश नारायण, शचीन्द्र सान्याल, श्री अमृतपाद डांगे, अजय घोष, बी.टी. रणदिवे जैसे लोग बंद थे। यहाँ अनेक गतिविधियाँ निरंतर चलती रहती थीं। इसी जेल में प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता रुस्तम सैटिन भी बंद थे। उन्होंने उस समय के नरेन्द्र के जेल जीवन को स्मरण करते हुए लिखा है : "देवली जेल में कुछ माँगों को लेकर लगातार संघर्ष चलता रहता था। इसी सिलसिले में वह ऐतिहासिक भूख-हड़ताल भी थी। जो उन्नीस दिन तक चली। इस भूख हड़ताल में भाई नरेन्द्र ने जिस आत्मबल का परिचय दिया, वह भुलाया नहीं जा सकता। उस समय भाई नरेन्द्र का शरीर दुर्बल व दुबला-पतला था और भूख-हड़ताल के आरंभ में मुझे इस बात का भय था कि कहीं उनका स्वास्थ्य एकदम ही न बिगड़ जावे, परंतु उन्होंने अपने दृढ़ मनोबल के सहारे जिस सफलता और साहस के साथ इस यातना का मुक़ाबला किया वह वास्तव में इस बात का द्योतक सिद्ध हुआ कि भाई नरेन्द्र न केवल एक मनीषी ही हैं, वरन् एक ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति हैं, जो बड़े से बड़े कष्ट को हँसकर झेल सकते हैं।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 24)। *मिट्टी और फूल* संग्रह (42) की अधिकांश कविताएँ जेल में ही लिखी गईं। यहीं इन्होंने 'आओ हथकड़ियाँ तड़का दूँ' तथा 'लाल रंग है ढाल साथियो दुनिया के मजलूमों की' जैसी सशक्त कविताएँ लिखी थीं। यहीं रहकर नरेन्द्र शर्मा ने अपनी ऐतिहासिक कविता 'यकुम मई' की रचना की। ये सभी कविताएँ *लालनिशान* नामक पुस्तिका में संगृहीत हैं। इसी देवली जेल के एकांत में नरेन्द्र जी ने अपने प्रथम कथाकाव्य *कामिनी* का भी प्रणयन किया।

नरेन्द्र शर्मा को ज्योतिष में रुचि तो प्रयाग में रहते ही हो गई थी। बनारस आ जाने पर अनेक ज्योतिष विद्वानों के संसर्ग में उसका पर्याप्त अध्ययन-मनन किया। श्री सुमित्रानंदन पंत जी इसकी पुष्टि करते हुए लिखते है : "सन् 1940 में नरेन्द्र बनारस की जीवन-गंगा में डुबकी लगाने चला गया, जहाँ वह जिज्ञासावश संभवतः अनेक ज्योतिषियों के संपर्क में आ सका और उसका ज्योतिष-विद्या का ज्ञान, जिसके बीज उसके मन में प्रयाग के निवास काल में ही पड़ चुके थे,

बनारस में और भी पुष्पित-पल्लवित हो सका।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 3) पर इसे इन्होंने व्यवसाय का हिस्सा कभी नहीं बनाया। फ़िल्म नगरी बम्बई में इसके अनेक अवसर थे। इनके इस ज्योतिष ज्ञान की जानकारी बहुत लोगों को थी। उनके पुत्र परितोष ने लिखा है : "कई लोग दूर की पहचान निकालकर भी पापा को कुंडली दिखाने आ जाते हैं। कोई परिवार की समस्या लिए, कोई विवाह के संवंध में, कोई बच्चे के नामकरण के लिए आते हैं। कई बच्चों को पापा द्वारा दिए हुए नाम मिले हैं। जब नामकरण के बारे में लिख रहा हूँ, तो मैं यह भी बता दूँ, जो शायद कम लोगों को मालूम होगा, कि 'विविधभारती' और उसके अन्य कार्यक्रम जैसे जयमाला, मनोरंजन, मंजूषा, चौबारा, हवामहल आदि के नाम पापा ने ही रखे हैं।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 50-51) इस विद्या में रुचि के कारण बंबई आकर इन्होंने महाराष्ट्र और दक्षिण भारत के विद्वान ज्योतिषियों के ग्रंथों का अध्ययन किया तथा उनके संपर्क लाभ से अपने ज्योतिष ज्ञान को और व्यापक-गहन बनाने का प्रयत्न किया।

बंबई प्रवास

जेल जीवन से मुक्ति के बाद नरेन्द्र शर्मा पुनः प्रयाग आ गए। उन्हीं दिनों बॉम्बे टाकीज़ में पहले से काम कर रहे प्रसिद्ध कथाकार श्री भगवतीचरण वर्मा को गीतकार प्रदीप की टक्कर का गीतकार लेकर आने के लिए कहा गया। इसका वर्णन करते हुए नरेन्द्र शर्मा लिखते हैं : "1943 के फ़रवरी माह में भगवती बाबू अचानक घर आए और बोले, 'देखो हम तुमको बंबई ले चलते हैं, फ़िल्म वालों ने बुलाया है गीत-लेखन के लिए।' मैंने कहा, 'भगवती बाबू फ़िल्म के लिए गीत-लेखन का अभ्यास तो हमें है नहीं, बिल्कुल भी नहीं और फिर फ़िल्म वालों से परिचय भी तो नहीं।' भगवती बाबू ने उत्तर दिया, 'हम भी तो वहाँ हैं, चिन्ता क्यों करते हो चलो।' ....बॉम्बे टॉकीज़ संस्था की निदेशिका थीं उस समय की विख्यात अभिनेत्री देविका रानी। मुझे याद है कि 17 फ़रवरी के अपराह्न अर्थात् दोपहर बाद हम उनसे मिलने पहुँचे थे। भगवती बाबू साथ में थे। देविका जी से दो घंटे चर्चा हुई। अंत में उन्होंने पूछा आप हमारे बुलावे पर इलाहाबाद से कब रवाना हुए? मैंने उत्तर दिया : '15 फ़रवरी को।' इस पर उन्होंने यह कहकर मुझे आश्चर्यचकित कर दिया, 'तो 15 फ़रवरी से आपकी बॉम्बे टॉकीज़ में नियुक्ति पक्की।' तीन वर्ष हम वहाँ रहे। वहाँ रहकर सर्वप्रथम 'हमारी बात' फ़िल्म के लिए गीत लिखे।"

इस फ़िल्म के लिए नरेन्द्र जी का गीत 'मैं उनकी बन जाऊँ रे।' –इतना लोकप्रिय हुआ कि इनका फ़िल्म जगत में विशिष्ट स्थान बन गया। इस गीत की धुन प्रसिद्ध बाँसुरीवादक श्रीपन्नालाल घोष की पत्नी पारुल घोष ने बनाई थी और

इसे प्रस्तुत किया था प्रख्यात अभिनेत्री देविका रानी ने। यह देविका रानी की अंतिम फ़िल्म थी किन्तु अब तक नरेन्द्र शर्मा की फ़िल्म उद्योग में पर्याप्त प्रसिद्धि फैल चुकी थी। इन्हें अनेक फ़िल्मों के अनुबंध मिलने लगे थे। 'ज्वारभाटा' फ़िल्म में लिखा इनका गीत 'साँझ की वेला पंथी अकेला' भी अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इस तरह बॉम्बे टाकीज़, राजकमल, मिनर्वा, प्रभात आदि जो बड़ी-बड़ी संस्थाएँ थीं–उनके साथ नरेन्द्र जी ने काम किया।

इधर बंबई में नरेन्द्र जी को भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर और प्रिन्स ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम के निदेशक डॉ. मोतीचंद्र जैसे मित्र एक साथ मिल गए। वहाँ बैठकें जमने लगीं। इसे याद करते हुए अमृतलाल नागर ने लिखा है : "नरेन्द्र शर्मा मित्र मंडली में ही नहीं, बॉम्बे टाकीज़ के वातावरण में भी अपनी विशेषताओं के कारण ही इतनी जल्दी घुलमिल गए थे। इस नन्हे-से आदमी में एक ऐसा चुंबक है जो सहज ही में सबको अपनी ओर खींच लेता है। नरेन्द्र जी बंबई घूमना चाहते थे, मुझसे अच्छा साथी कौन हो सकता था। प्राय: रविवार को हम दोनों बस पर या पैदल बंबई की चौहद्दी नापते-फिरते थे। कुछ ही दिनों में संयोगवश नरेन्द्र जी को मेरे घर से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर एक मकान मिल गया। फिर तो एक भी ऐसा दिन याद नहीं आता जबकि हम दोनों न मिले हों। नौ बजे रात से डेढ़-दो बजे तक हम लोग बातें करते थे। देशकाल, गाँधी, मार्क्स आदि पर विचार-विमर्श करना, उम्रे नौ की तरंगों में उछलकर रंगीनियों और हँसी-खुशी की बातों में रमना, फ़िल्मी धंधे की चर्चा करने के लिए हमारे पास बातें ही बातें थीं।" उन्हीं दिनों कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से *नया साहित्य* नामक पत्रिका का संपादन नरेन्द्र और नागर जी ने किया। तब तक नागर जी का परिवार भी बंबई आ गया था। नरेन्द्र जी शीघ्र ही नागर परिवार के सदस्य बन गए। नरेन्द्र शर्मा का पंत जी से स्नेह का नाता था, जो *रूपाभ* के संपादन काल में और सुदृढ़ हो गया था। वे इनके पास अक्सर आकर रह जाया करते थे। बंबई रहते हुए ही इनका सुशीला गोदीवाला से परिचय हुआ। यह परिचय क्रमश: प्रगाढ़ होता चला गया। गोदीवाला कभी पहले आगरा में स्टेशन मास्टर रह चुके थे तथा नागर जी की पत्नी का पुराना परिचय भी निकल आया था। नागर जी की ससुराल आगरे में थी। नागर जी की पत्नी प्रतिभा जी ने उन्हें पहचान लिया। अब तो प्रतिभा जी सुशीला गोदीवाला परिवार से मिलकर उनसे अपनापे का नाता जोड़ आईं। नरेन्द्र जी और सुशीला के विवाह की बात तब तक लगभग तय हो चुकी थी। उस समय का स्मरण करते हुए नागर जी लिखते हैं : "बड़ी धूमधाम से विवाह हुआ। मेरी माता बंधु से बहुत प्रसन्न थीं। और पंत जी को जो उन दिनों बंबई में ही नरेन्द्र जी के साथ रहा करते थे, वह देवता के समान पूज्य मानती थीं। मुझसे बोलीं "नरेन्द्र और बहू का स्वागत हमारे घर पर होगा।" यह स्वागत-समारोह भी अनोखा

था। पंत जी ने अपनी कविता सुनाई और माननीया सुब्बुलक्ष्मी जी ने मांगलिक गीत गाए। वह दिन आज भी याद आ रहा है तो मेरी आँखें वे स्मृतियाँ लिखते हुए बरस रही हैं। सपना हो गए वे दिन।"(*शेष-अशेष*, पृष्ठ 68)

इस प्रकार नरेन्द्र जी बंबई के स्थायी निवासी हो गए। नारी के प्रति आकर्षण और प्रेम तो नरेन्द्र जी में पहले से ही विद्यमान था। किन्तु वास्तव में उन्होंने नारी को विवाह के बाद ही जाना। नारी के प्रति उनकी रूमानी भावना बदलकर अब उसके प्रति आस्था और विश्वास में बद्धमूल हो गई । फलत: अब इनके काव्य का स्वर भी स्वच्छंदतावाद से मर्यादावाद की ओर उन्मुख हो जाता है। यही नहीं नरेन्द्र धर्म, दर्शन, अध्यात्म के क्षेत्र में चले जाते हैं। कविता वहीं से ढलकर पाठकों के सामने आती है। पहले भले ही चाँदनी उनकी कविता में हिलोरें मारती, संवाद करती, रहस्यों का उद्‌घाटन करती रही हो किन्तु अब दर्शन महत्त्वपूर्ण हो जाता है। शमशेर के शब्दों में–"उनका शिल्पी, उनके कवि से आगे निकल जाता है, केवल दर्शन जहाँ उसके साथ रहता है। क्या इसी दर्शन में एक तरह का 'विशुद्ध काव्य' हमें उपलब्ध होता है?" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 22ख)।

1947 ई. में विवाह के बाद नरेन्द्र शर्मा ने लगभग दस वर्ष फ़िल्मों के लिए लेखन किया। बीच-बीच में रेडियो पर कार्यक्रम के लिए जाते थे। फिर सन् 1953 ई. में आप तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री डॉ. केसकर के आग्रह पर आकाशवाणी में आ गए। उन दिनों आकाशवाणी पर अधिक सुरुचिपूर्ण, लोकप्रिय और सार्थक कार्यक्रमों का निर्माण कराने के लिए साहित्यकारों को आकाशवाणी में लाने का उद्योग किया जा रहा था। इसी क्रम में पंडित सुमित्रानंदन पंत, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी आदि आकाशवाणी में लाए गए। केसकर साहब ने एक व्यापक कार्यक्रम बनाया कि आकाशवाणी के बड़े-बड़े केन्द्रों पर लाइट म्यूज़िक यूनिट बनाई जाएँ। उनमें फ़िल्मी गीतों जैसा छिछोरापन और बाज़ारूपन न हो। बंबई में इस भाग के प्रोड्‌यूसर नरेन्द्र नियुक्त किए गए।' नरेन्द्र शर्मा ने पहले तो सुगम संगीत विभाग के कार्यक्रमों को स्वच्छ और सुरुचि-संपन्न बनाने का बीड़ा उठाया। आकाशवाणी के कार्यक्रमों को अपने संस्पर्श से ताज़गी प्रदान की। इन्होंने फ़िल्मी दुनिया के प्रसिद्ध संगीतकारों से प्रसारगीतों की धुनें बनवाईं। इस प्रकार नरेन्द्र जी के नेतृत्व में अनेकानेक नए कार्यक्रमों का सृजन हुआ। विविधवर्णी कार्यक्रमों का खाका तैयार हुआ। इनमें से एक प्रमुख कार्यक्रम बना : 'विविधभारती'। इसकी सफलता के बाद कुछ अन्य कार्यक्रम भी रचे गए जैसे, जयमाला, हवामहल आदि। इस प्रकार के हल्के-फुल्के कार्यक्रमों के माध्यम से ऐसे रूपक और गीत प्रसारित हुए जिन्होंने राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना का अहसास भी जगाया। श्रोताओं को सुरुचि-संपन्न बनाने में योगदान किया तथा आकाशवाणी को एक प्रतिष्ठित प्रसारण-संस्थान बना दिया।

आकाशवाणी से सेवानिवृत्ति के बाद नरेन्द्र शर्मा अपने घर–खार, बंबई वापस आ गए तथा स्वतंत्र रूप से फ़िल्मी गीत, धारावाहिक, भजन इत्यादि लिखने तथा अपनी साहित्यिक गतिविधियों में व्यस्त हो गए। 1953 ई. में आकाशवाणी में आने से पूर्व आप फ़िल्मों के लिए गीत-रचने के लिए ख्यात हो चुके थे। बॉम्बे टाकीज़, फ़िल्मिस्तान जैसे प्रमुख फिल्म संस्थानों में कार्य कर चुके थे। इनकी प्रारंभिक फिल्में 'हमारी बात', 'भाभी की चूड़ियाँ' के गीत घर-घर में लोकप्रिय हो चुके थे। वहाँ से इन्हें बुलावे आने लगे। इसका एक कारण यह भी था कि इन्होंने जहाँ भी काम किया गंभीरतापूर्वक निष्ठा से काम किया तथा वहाँ के वातावरण तथा काम के स्तर को ऊपर उठाने में अपनी भूमिका निबाही।

ज्योतिष एवं अन्य पौराणिक विषयों में नरेन्द्र शर्मा को प्रारंभ से ही रुचि थी। बंबई आने के बाद इनमें उस रुचि का और विकास हुआ। भारतीय संस्कृति के प्रमुख ग्रंथ *रामायण*, *महाभारत* इनके प्रिय ग्रंथ थे। इनका गहन अध्ययन-मनन इन्होंने यहाँ रहकर किया। ज्योतिष के विभिन्न विभागों में गहरी दिलचस्पी के कारण उसका भी गहन अध्ययन किया गया। परंतु इसे कभी व्यवसाय नहीं बनाया। महाभारत में रुचि होने के कारण ये 'महाभारत' धारावाहिक के निर्माता बी. आर. चोपड़ा के अंतरंग बन गए। इसलिए जब उन्होंने 'महाभारत' धारावाहिक का निर्माण प्रारंभ किया तो नरेन्द्र जी उनके परामर्शदाता बने। पटकथा-लेखक, गीतकार के रूप में उन्हें स्थान दिया गया। शिवमंगल सिंह 'सुमन' के शब्दों में–"वे शब्द ब्रह्म के साधक और संवेदन तत्त्व के अनन्य पारखी थे।" (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 87) *महाभारत* के आंतरिक सारतत्त्व को समझने वाले। उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने वाले। इसीलिए ये 'महाभारत' से व्यावसायिक रूप से न जुड़कर आत्मीयता और निष्ठा से जुड़े हुए थे। उनके जीवन की अंतिम रचना भी महाभारत का यह दोहा ही है :

शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत।
अंत यही ले जाएगा, कुरुक्षेत्र पर्यन्त ।।

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त दोहे का रचनाकाल 9 फ़रवरी, 1989 ई. है तथा 11 फरवरी, 1989 ई. को हृदय-गति रुक जाने से उनका देहावसान हो गया।

नरेन्द्र शर्मा के इस आकस्मिक निधन से हिन्दी संसार स्तब्ध रह गया। उनके चले जाने से उत्तर छायावाद काल का एक महत्त्वपूर्ण कवि-गीतकार, एक सौम्य व्यक्तित्व, एक समूचा युग समाप्त हो गया। हिन्दी साहित्य जगत और उनका कार्य क्षेत्र बंबई एक संवेदनशील कवि, एक वरिष्ठ साहित्यकार, एक गरिमामय व्यक्तित्व से वंचित हो गया। इनके पीछे परिवार में इनकी व्यथित पत्नी और पुत्र परितोष रह गए। पुत्रियों का विवाह हो चुका था। ये प्रमुख पारिवारिक दायित्वों से

निवृत्त हो चुके थे। किन्तु फिल्मनगरी बंबई के उनके इष्टमित्रों को एक श्रेष्ठ कवि-गीतकार खो देने का आत्यंतिक कष्ट हुआ। (*शेष-अशेष*, अभिनंदन ग्रंथ) नरेन्द्र शर्मा अपनी भाव-प्रवणता, संवेदनशीलता, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के अंकन तथा सौन्दर्य-प्रेम की सहज अभिव्यक्ति के साथ हिन्दी जगत में उपस्थित हुए थे। उन्होंने अपनी कविताओं-गीतों के माध्यम से सामान्यजन को अपने से जोड़ा था। साथ ही, कविता को लोकप्रिय और स्तरीय बनाए रखने का प्रयत्न भी किया। इससे परवर्ती कवि-गीतकारों की पीढ़ी को प्रेरणा मिली।

× × ×

नरेन्द्र शर्मा की काव्य-विकास यात्रा पर्याप्त सुदीर्घ रही है। उसमें समय-समय पर परिवर्तन भी होते रहे हैं। अपनी प्रारंभिक रचनाओं से ही प्रसिद्ध हो जाने वाले नरेन्द्र की रचनाशीलता में एकाधिक मोड़ दिखाई देते हैं। पहला मोड़ उनकी राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी करने तथा जेल जीवन में अनेक कार्यक्रमों एवं राजनेताओं से संपर्क होने से पैदा होता है, जिसका प्रमाण *लाल निशान* की कविताएँ हैं। तो दूसरा जेल से बाहर आने तथा बंबई में स्थायी निवास बना गृहस्थ जीवन में कूदने और जीवन-संघर्ष में जूझने से पैदा होता दिखाई देता है। *हंसमाला* (1946 ई.) की कविताओं में प्रेमगीतों के साथ-साथ अब जीवन-जगत के विषय में चिन्तन से युक्त कविताएँ सामने आने लगती हैं। कवि का अनुभव-संसार विस्तृत-समृद्ध होता दिखाई देता है। 1948 ई. में महात्मा गाँधी की हत्या से कवि को गहरा आघात पहुँचता है। इस घटना से प्रेरित इनकी कविताओं का संकलन *रक्त चंदन* नाम से प्रकाशित हुआ। इस संकलन के 'निवेदन' में नरेन्द्र शर्मा ने लिखा है : 'वह रक्त नहीं रक्त चंदन था जिससे गाँधी जी हमारे स्वातंत्र्य-प्रभात को सींच गए हैं।' कथनीय है कि कवि का यह गाँधी-प्रेम सामयिक नहीं है। कवि बहुत समय पहले से गाँधी के कार्यों से प्रभावित हो कविताएँ लिखता चला आया था। 1946 ई. में लिखित 'अहिंसा-क्रांति' कविता में उन्होंने गाँधी को अहिंसा-क्रांति के जन्मदाता के रूप में स्मरण किया है।

बंबई-निवास के दौरान-फ़िल्मों के लिए गीत-लेखन करते हुए भी नरेन्द्र शर्मा अपनी साहित्य-साधना में निरंतर लगे रहे। अपने युग-धर्म को अभिव्यक्ति देते रहे। यही कारण है कि सन् 1950 ई. में प्रकाशित काव्य-संग्रह *अग्निशस्य* में कहीं स्वतंत्रता-प्राप्ति की अनुगूँजें सुनाई देती हैं तो प्रेम और प्रकृति की पुरानी धारा भी प्रवाहित होती दिखाई देती है। विशेष यह कि अब जीवन के शाश्वत सत्य इनकी कविताओं में पहले से अधिक स्थान ग्रहण करने लगते हैं। *कदलीवन* (1953 ई.) कविता-संग्रह की अनेक कविताओं में स्थूल और सूक्ष्म की चर्चा

करते हुए कवि की दृष्टि सूक्ष्म पर केन्द्रित हो जाती है। हालाँकि अपने समसामयिक जीवन की अनुभूति और तापयुक्त कविताएँ अब भी प्रधानता में हैं। भले ही ब्रह्म और माया की चर्चा ये अपनी कविता में क्यों न करने लगे हों :

भूल ब्रह्म ज्ञान, बना ब्रह्म आज माया।
माया का यह स्वरूप मुझे बहुत भाया।।

इतना अवश्य कहा जाएगा कि कवि अब इस जीव-जगत-ब्रह्मांड में परम ब्रह्म परमात्मा की प्रतिच्छवियाँ देखने-दिखाने में कोई संकोच नहीं करता। परंतु जीवन के संश्लिष्ट अनुभवों से वह दूर नहीं हुआ है। हालाँकि इस प्रकार की कविताओं को देखकर आलोचकों ने इन कविताओं पर नीरस होने का आरोप लगाया है। कविताओं में जब वैचारिकता की वृद्धि होती है तो भावावेग पर अंकुश स्वयमेव लग जाता है। यहाँ भी ऐसा ही कुछ हुआ है फिर भी कवि ने अपने आसपास के जीवन के कुछ अनुभूति-प्रवण चित्र अभी भी अपनी कविताओं में दिए हैं।

1964 ई. में प्रकाशित 'प्यासा निर्झर' काव्य संग्रह में सौमनस्य विहीन एवं विघटित जीवन की कविताएँ कम नहीं हुई हैं। पर अब वह विषम परिस्थितियों से जूझने की अपेक्षा नियति अथवा ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाने के सरल मार्ग को अपनाता जान पड़ता है। वह अपने पूर्ववर्ती अग्रज कवि सुमित्रानंदन पंत के समान भाववादी दर्शन से प्रभावित हो लिखता है :

मन में हरि, रसना पर षडरस
अधर धरे मुसकान सुहानी
हरि तक उसे नचाती लाती
हरि की जिसने बात न मानी।

इसी क्रम को 1967 ई. में प्रकाशित *बहुत रात गए* कविता-संग्रह में भी विकसित होते हुए देखा जा सकता है। कवि घोर स्वार्थी, छल-कपट युक्त संसार में स्वयं को विपरीत स्थितियों में घिरा हुआ पाता है। ऐसे में उसे ईश्वर के अतिरिक्त और कहीं त्राण नहीं मिलता। इस घोर पूँजीवादी युग में व्यक्ति-मूल्य, सामाजिक-मूल्य नहीं, वस्तुओं के मूल्य महत्त्वपूर्ण मान लिए गए हैं। देश या राष्ट्र किसी की भी प्राथमिकता में नहीं। कवि लिखता है :

आज हिल रही राष्ट्र की नींव
व्यक्ति का स्वार्थ न टस से मस,
राष्ट्र के सिवा सभी स्वाधीन
व्यक्ति-स्वातंत्र्य अहं के वश।

कवि पूरे प्राण-पण से इसका विरोध करता है। पर ऐसा क्यों हो रहा है—इसका विश्लेषण नहीं कर पाता। वह अभी भी सामान्य जन के सुख-दुःख से जुड़ा है। इसीलिए सामान्य व्यक्ति को इस सबके विरोध में जाग्रत करने का प्रयास करता है। संभवतः समाज में कोई आंदोलन न होने के कारण इनकी ये कविताएँ अनसुनी रह जाती हैं। वह प्रभु से प्रार्थना करता हुआ कहता है :

ध्यान करो निज बल का
भारत पवन कुमार,
एक बार फिर उठो गगन में
कनक भूधराकार।

कवि 'भारत पवन कुमार' से काम बनता न देख पुनः ईश्वर की शरण में आ जाता है। *दैव दया महती। सिर माथे रहती*—तभी मनुष्य के सब काम सधते हैं। यहाँ तक भी ठीक है। परंतु कवि जब उसी के आसरे रहने की बात करने लगता है तब वह नव रहस्यवाद के दायरे में प्रवेश कर जाता है। अपने अंतिम काव्यसंग्रह *मुट्ठी बंद रहस्य* में तो वह संसार से अपने को खींच कर युग-युग के अनुभवों को संचित करता हुआ शुद्ध सच्चिदानंद की चर्चा करने लगता है।

मुट्ठी में जिसके हर कोई वह मुट्ठी में बंद
मुट्ठी भर आकाश वस्तुतः, शुद्ध सच्चिदानंद।

दरअसल यह वार्धक्य का स्वर है जिसमें कवि बाहरी जीवन-जगत से अपनी सारी ऊर्जा समेट कर अंतर्मुखी हो जाता है तथा जीवन की नश्वरता-क्षणभंगुरता की चर्चा करने लगता है :

प्राण अब ढलता है दिनमान।
गुंजित दिशावंश कुंजों में कालहंस का गान।

अब कविता का स्वर बदल जाता है। कवि गाँधी की हत्या की घटना को *वज्रलेख विधि की रचना का* मानने लगता है। प्रकृति संबंधी कविताओं में मुक्त पर्यवेक्षण के स्थान पर चिन्तनपरकता अथवा शाश्वत सत्य की खोज नरेन्द्र शर्मा की पहचान को बदल देता है।

कथनीय है कि नरेन्द्र शर्मा ने पाँच प्रबंध काव्यों की भी रचना की है। इनमें सबसे पहला *कामिनी* नामक प्रेम-कथाकाव्य है। इसकी रचना 1941-42 ई. में जेलजीवन के दौरान हुई थी। *कामिनी* काव्य को परवर्ती संस्करणों में 'मनोकामिनी' नाम से जाना गया। यह प्रेमानुरक्त युवती एवं अतिथि युवक की कथा है जिसमें संयोग-वियोग, संतान-प्राप्ति तथा उनके सफल पारिवारिक जीवन की नाटकीय कथा कही गई है। नरेन्द्र शर्मा के शेष—*द्रौपदी, उत्तरजय, सुवर्णा, सुवीरा* प्रबंध काव्य

महाभारत की कथा से जुड़े हुए हैं। *द्रौपदी* (1960 ई.) को नारी-शक्ति के शाश्वत प्रतीक रूप में कल्पित करते हुए कवि ने युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पाँचों भाइयों को पाँच महातत्त्वों के रूप में देखा है तथा द्रौपदी को इन्हें संश्लिष्ट कर तेजोमय रूप देने वाली शक्ति के रूप में उपस्थित किया है। नरेन्द्र शर्मा का यह प्रतीकात्मकता से युक्त प्रबंध काव्य नवोन्मेष से युक्त महत्त्वपूर्ण काव्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ है।

उत्तरजय (1965 ई.) जय यानि महाभारत के उत्तरार्ध की कथा से समन्वित प्रबंध काव्य है। इसमें दुर्योधन के आहत हो जाने पर अश्वत्थामा क्रोध में द्रौपदी के पाँचों पुत्रों और भाई दृष्टद्युम्न का वध कर देता है। द्रौपदी अश्वत्थामा से प्रतिशोध लेने के लिए कहती है। युधिष्ठिर गुरुपुत्र अश्वत्थामा से प्रतिशोध लेना उचित नहीं समझते। तब श्रीकृष्ण अश्वत्थामा को पीड़ा का महत्त्व समझाते हुए उससे अपने ब्रह्मास्त्र की ज्वाला समेट लेने तथा अपनी मणि प्रदान करने के लिए कहते हैं। अपने चौथे प्रबंध काव्य *सुवर्णा* (1970 ई.) में कर्ण और सुवर्णा की प्रेम कहानी कही गई है। सुवर्णा स्वर्ण दुर्ग के महाराज की अप्रतिम सुंदरी कन्या है। कर्ण द्वारा स्वर्णदुर्ग जीत लेने के बाद सुवर्णा बंदिनी बनती है। कर्ण उससे प्रेम करने लगता है। सुवर्णा उसे सूत-पुत्र समझ स्वीकार नहीं कर पाती। कर्ण उसपर बल प्रयोग कर किसी भी प्रकार अपने अनुकूल करना उचित नहीं समझता और उसे मुक्त कर देता है। इस प्रकार उक्त प्रबंध काव्य में कर्ण के मनुष्य रूप को प्रमुखता से उभारा गया है।

सुवीरा (1972 ई.) नरेन्द्र शर्मा का पाँचवाँ प्रबंध काव्य है। इसमें महाभारत के विदुला उपाख्यान की कहानी कही गई है तथा माता कुंती के द्वारा युधिष्ठिर को अपने नाम के अनुसार युद्ध में स्थिर रहने के लिए कहा गया है। सौवीर राष्ट्र की माता विदुला के विधवा हो जाने, राजकुमार संजय के पालन-पोषण करने तथा उसे वीर पुरुष बना गद्दी पर बैठाने की कथा इस काव्य में आई है। प्रजावत्सल एवं मातृभक्त संजय एक बार ऐसी स्थिति में फँस जाता है कि युद्ध से उसे जान बचाकर भागना पड़ता है। पर माता विदुला अपने पुत्र संजय एवं सौवीर राष्ट्र में युद्ध कर पुनः जीतने का उत्साह भरती है जिसमें राजकुमार अंततः सफल होता है। इस प्रकार यह मातृशक्ति की कथा कहने वाला प्रबंध काव्य है।

साहित्यिक जीवन के प्रारंभ में नरेन्द्र शर्मा ने अनेक कहानियाँ भी लिखी थीं जो पर्याप्त चर्चित हुईं। 1942 ई. में प्रकाशित इस कहानी-संग्रह का नाम *कड़वी मीठी बातें* रखा गया था जो बाद में *ज्वाला परचूनी* नाम से पुनः प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त नरेन्द्र जी के कुछ निबंध समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं जिनका संकलन अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

जैसा कि कहा गया कवि नरेन्द्र शर्मा महात्मा गाँधी के जीवन-कर्म से बहुत प्रभावित रहे थे। आपने उनकी जीवनी–*मोहनदास करमचंद गाँधी–एक प्रेरक जीवनी* बहुत सरल और प्रभावशाली गद्य में लिखी है। इसे गाँधी जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर 1969 ई. में प्रकाशन विभाग, भारत सरकार ने प्रकाशित किया था। गाँधी जी की शिक्षा-दीक्षा से लेकर दक्षिण अफ्रीका में चलाए गए आंदोलन तथा भारत में आकर किए गए उनके कार्यों का प्रमुख ब्यौरा बड़े सरस गद्य में इस पुस्तक में निबद्ध किया गया है। ❑

3

गीत और काव्य रचनाएँ

नरेन्द्र शर्मा छायावाद-प्रगतिवाद के संधियुगीन काव्यधारा के अग्रणी कवि हैं। ठीक ही कहा जाता है कि जैसा उनका सुकुमार, सौम्य और संकोची व्यक्तित्व था, वैसी ही उनकी रचनाएँ थीं। विद्यार्थी काल में ही सारे इलाहाबाद में इनकी धूम मच गयी थी। वरिष्ठ कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने उस समय के इनके प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखा हैं : "विश्वविद्यालय के युवक-युवतियाँ उनके गीतों को ऐसे गुनगुनाते फिरते थे जैसे किसी मधुवन में मदमस्त भौंरों की गुंजन डाल-डाल और पात-पात में मुखरित हो उठी हो।" (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 84) दरअसल छायावाद के उत्तरार्द्ध का यह काल ही ऐसा था कि युवा कवियों की भावुकता एक ओर अपने उठान पर थी तो दूसरी ओर ये अपने समय के प्रति सचेत हो समाज के लिए कुछ कर गुजरने के लिए उतावले हो रहे थे। इनमें आस्था-विश्वास पैदा हो रहा था। ये सदियों पुराने आध्यात्मिक लबादे को उतार अपने निजी हर्ष-विषाद,. कामना-आकांक्षाओं को अपने गीतों-कविताओं में स्वर प्रदान कर रहे थे।

नरेन्द्र की प्रारंभिक रचनाओं में युवामन की अभिव्यक्तियाँ हैं जहाँ ये युवा नयनों से जीवन-जगत के सौन्दर्य को, निजी सपनों और आशा-निराशाओं को, अपने प्रेम की बेचैनी को अकुंठ भाव से उभार सके हैं--मानवीय रागों की जीती-जागती और बोलती मूर्त्तियों के समान। इनमें न छद्म दार्शनिकता होती, न भद्रता का आवरण। यही नहीं, अपनी इन रचनाओं में नरेन्द्र प्राकृतिक दृश्यों की छोटी-से-छोटी सुंदरता को भी शब्द देने में सफल हुए हैं। इनके समकालीन कथाकार मित्र श्री अमृतलाल नागर ने इनकी तत्कालीन कविताओं को स्मरण करते हुए लिखा है : "सन् '36-'37 के दिनों नरेन्द्र शर्मा के गीत गुनगुना कर हम लोग अपने नौजवान दिलों में प्यार और रोमांस की भावना को पोसा करते थे।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 128) नरेन्द्र की रचनाओं में प्रेमी मन की प्यास, लालसा, उत्कंठा और मिलनेच्छा तथा बाद में निराशा और अवसाद के भाव काफ़ी देर तक बने रहे

हैं, जो इनके काव्य-रसिकों के हृदय को सीधे स्पर्श करते हैं। साथ ही, इसमें उन्होंने रहस्यवाद और छायावाद के इंद्रजाल तथा कठिन कल्पनाओं को हटाकर अपनी अनुभूतियों को मानव-सुलभ भावनाओं से युक्त बनाया है।

नरेन्द्र शर्मा का पहला काव्य-संग्रह *शूलफूल* उन्नीस वर्ष की आयु में सन् 1932 ई. में प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह की सभी कविताओं और गीतों में प्रेम और रूप-सौन्दर्य का आकर्षण प्रमुख है। नरेन्द्र की इन प्रारंभिक कविताओं के विषय में कवि केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं : "नरेन्द्र की कविताओं और गीतों में रूप और प्रेम की अभिव्यक्ति होती थी और यह अभिव्यक्ति पूरी ताज़गी के साथ बिना किसी वर्जना के, खुले शब्दों में वैसे ही खिल और खुल पड़ती थी जैसे सिर से पैर तक टेसू का पेड़ लहककर खड़ा हो और देखने वाला उसे देखता ही रह जाए।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 15) यहाँ रीतिकालीन कवियों की तरह कामभाव जाग्रत करने के लिए ये कविताएँ नहीं लिखी गईं बल्कि मन की आकुल तरंगें सीमा तोड़कर कवि-हृदय से स्वत: फूट निकली हैं। इन्हीं का क्रमिक विकास उन्मुक्त प्रेम, मांसल सौन्दर्य और आसक्ति से भरे गीतों में होता है। इन्हीं कविताओं से नरेन्द्र शीघ्र लोकप्रिय हो जाते हैं। नरेन्द्र का उल्लास, विरह-वेदना और उसकी कसक निस्संकोच रूप से इन गीतों में व्यक्त हुई है। सन् 1934 ई. में इनके दूसरे काव्यसंग्रह में *कर्णफूल* की 'मिलन' कविता इसका उदाहरण है :

बहुत दिनों तक दूर रह लिए
आओ अंक-मिलन कर लें!
विरह-व्यथा के दिन सुमिरन कर
दृढ़तर आलिंगन भर लें।

(*कर्णफूल*, पृष्ठ 3)

इन गीतों में प्रेम की यह उत्कंठा देखकर वरिष्ठ छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत ने इन्हें 'किशोर प्रणय के आवेग' का कवि बताया। निस्संदेह ये कविताएँ यौवन के भावोद्वेलन से युक्त हैं। कविताओं में निजी प्रेमानुभूतियों को संकोच रहित ढंग से व्यक्त किया गया है। इनके पूर्ववर्ती छायावादी कवियों की प्रेमवेदना मर्यादा और संकोच के आवरण में बँधी, बहुत कुछ अशरीरी और वायवीय हो जाती थी। पर इनका प्रेम हाड़मांस का सांसारिक प्रेम है। रीतिकालीन कवियों की तरह ये रसिक भी नहीं हैं बल्कि कहीं-कहीं गार्हस्थ्य प्रेम की ओर झुकाव मिलता है। हास-विलास, मान, हर्ष, विषादादि की विविध छटाएँ इनकी रचनाओं में विद्यमान हैं जिनमें नवीनता और ताज़गी महसूस की जा सकती है। 'भावी पत्नी का ध्यान' कविता में कवि कहता है :

लिए एक कर में गृह-दीपक और दूसरे में मंगलघट;
कौन अतिथि-सी आती मेरे उर के प्रतिपल अधिक सन्निकट?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 81)

× × ×

कैसे कह दूँ मार्ग सुगम है, इस गिरि-पथ में गिरना होगा,
गिरकर उठना, उठकर गिरना, फिर उठ-उठ कर चलना होगा!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 83)

इन कविताओं का मूल स्वर युवक जनोचित प्रेम ही है। *कर्णफूल* संग्रह का एक प्रसिद्ध गीत 'आज न सोने दूँगी, बालम!' में नायिका का अल्हड़पन और आत्मीय प्रेम व्यंजित हुआ है। नायिका के प्रेममद पूरित लहजे को जिस गहराई से छुआ गया है तथा उसे जिस सहज ढंग से अभिव्यक्त किया गया है—वह लोक गीत की ऊँचाई को छूने वाला है :

आज न सोने दूँगी, बालम—
मेरे अधिक निदारे, बालम!
अर्ध निशा है, घिरी अँधेरी,
जगर-मगर निशि गूँज रही हैं,
चंचल हैं तारे, अंचल मन
अग-जग मदिरा छलक रही है—
यौवन-सरिता उमड़ पड़ी है
मधु की वेला आई, बालम!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 59)

इस संग्रह की कविताओं में एक धारा अनुभवजन्य सूक्तियों, नैतिकता, शाश्वत सत्य या चिंतन से संबंधित कविताओं की भी है। भले ही वह विरल हो—किन्तु उपेक्षणीय नहीं है। *कर्णफूल* में संगृहीत 'जरा चिन्तन', 'यदि', 'आह्वान' जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं :

हो गई किसी को यदि विरक्ति फूलों के कुम्हला जाने से,
तो जीवन के मधुमय फल से, उसको सच्ची आसक्ति न थी!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 74)

× × ×

मेरे पंकिल अहंकार में, जागो, हे अकलुष पंकज!
चपल चित्त के विकल नीर में, जागो, स्थिर तप के नीरज!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 85)

पर जैसा कि पहले भी कहा गया है कि इनकी कविता का मूल स्वर प्रेम है। प्रकृति उसके साथ लगी चली आती है। प्रकृति यहाँ छायावाद के समान आलंबन रूप में उतनी नहीं आई है बल्कि वह प्रेम के लिए रंजक का काम करती है। वसंत, कोयल, भौंरे, फूल, पेड़-पौधे या तो यौवनोन्माद को बढ़ाने वाले हैं या प्रेम-प्रतीक के रूप में आए हैं :

मैं चिर-प्यासी विकल चातकी
तुम बन आओ रस के बादल!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 21)

कथनीय है कि *शूलफूल*, *कर्णफूल* जैसे प्रारंभिक संग्रहों में कवि की अनेक अशक्त रचनाएँ भी आ गई हैं। कहीं-कहीं छायावाद के प्रमुख कवियों प्रसाद, पंत, निराला के गीतों की अनुगूँज लिए हुए 'खोलो, अवगुंठन खोलो,' या 'नयन भिखारी' जैसी कविताओं में कुछ शब्दबंध जयशंकर प्रसाद का स्मरण दिलाते हैं :

कहाँ मिलेगा स्नेह,
अरे मन-मधुकर मधुरस के प्यासे?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 25)

निम्नलिखित कविता-पंक्तियों में सुमित्रानंदन पंत का प्रभाव देखा जा सकता है :

तुम गा देती हो कौन गान?–
जगते पीड़ा के स्वप्नों से
मेरे अंतर के सजल गान,
शत्-शत् पर्वत निर्झर उठते
गिरते हैं नस-नस में अजान।

(उपर्युक्त, पृष्ठ 16)

1934-35 ई. से नरेन्द्र शर्मा के गीतों में परिवर्तन के स्वर लक्षित किए जा सकते हैं। कवि के अनुभव-क्षेत्र में विविधता आती है। उसमें वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता का स्वर भी मिलता चला जाता है। इसलिए 1938 में कवि ने *शूलफूल* और *कर्णफूल* की प्रतिनिधि कविताओं को चुनकर कुछ नई कविताओं के साथ एक नया काव्यसंग्रह *प्रभातफेरी* प्रकाशित किया। *आधुनिक कवि* संग्रह में 'अपनी बात' के अंतर्गत कवि ने बताया भी है : "जब इन दोनों (*शूलफूल* और *कर्णफूल*) संग्रहों के प्रथम संस्करण की सब प्रतियाँ बिक गईं, मैंने उनकी कुछ कविताएँ जोड़कर 1938 में *प्रभातफेरी* काव्य-संग्रह प्रकाशित किया।" *प्रभातफेरी* नाम ही राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ है। यहीं

प्रभातफेरी नामक जागरण गीत में उस समय की धड़कन साफ सुनी जा सकती है। कवि ने शून्य में सत्य की खोज करने वाले भौतिकता के बंदी मानव को राष्ट्रीय जागरण का संदेश देते हुए कहा है :

आओ, हथकड़ियाँ तड़का दूँ, जागो रे नतशिर बंदी!
उन निर्जीव शून्य श्वासों में
आज फूँक दूँ लो नवजीवन,
भर दूँ उनमें तूफानों का,
अगणित भूचालों का कंपन,
प्रलयवाहिनी हों, स्वतंत्र हों, तेरी ये साँसें बंदी!

(*प्रभातफेरी*, पृष्ठ 3)

इस काव्यसंग्रह में ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें तत्कालीन क्रांतिकारी आंदोलन की अनुगूँजें सुनी जा सकती हैं। 'भावी संतति' नामक कविता में साम्यवाद, 'कृषकों की अंतरात्मा : कवि के प्रति' में किसान आंदोलन की अंतर्ध्वनियाँ विद्यमान हैं। कवि अपने जर्जर समाज में पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करना चाहता है—उसे बदलना चाहता है। अपनी वैज्ञानिक सोच द्वारा उसका रूपांतरण कर देना चाहता है। उसमें आस्था और विश्वास का संबल है :

कंटकमय जीवन आजीवन / पर मैं निर्भय विश्वासी हूँ,
हूँ समर्थ मैं सबल सनातन, / पर नित नव-बल अभिलाषी हूँ,
सबल बनूँ, यदि बरसें काँटे नभ से शत-शत-धार!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 13)

इस प्रकार की सामाजिक-राजनीतिक चेतना से संबद्ध कविताओं से नरेन्द्र शर्मा का स्वर यथार्थोन्मुख हुआ है। वह अब केवल अंतर्मुखी नहीं रह गया। रूढ़िग्रस्त समाज में सामान्य जन की दुर्दशा देखकर उसका मन चीत्कार कर उठता है। समाज में किसानों, भिखारियों और कंगालों के प्रति किसी का ध्यान नहीं है। संसार की इस निर्दयता और अन्याय को देखकर यौवन के उफान में वह शंकर से सारे संसार को मरघट में बदल देने की प्रार्थना करने लगता है :

नाचो, शिव, इस निर्दय जग पर, अन्यायी के आडंबर पर,
ज्वाला के भूधर से नाचो, पहन चिता के चपल लपट पट
निखिल विश्व हो अवघट मरघट! नाचो, रुद्र, नृत्य प्रलयंकर!
नाचो, तांडव नृत्य भयंकर!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 131)

कथनीय है कि सामाजिक-राजनीतिक चेतना का स्वर ही वह नया स्वर है जो इन्हें प्रेम और प्रकृति की कविताओं से आगे ले जाता है। यह नहीं कि अब वह प्रेम और प्रकृति की कविताएँ नहीं लिखता। टांडा के जलप्रपात को देखकर 'शैल कुमारी' अथवा पावस ऋतु को देखकर 'वर्षाश्री' कविताएँ प्रकृति से संबद्ध हैं। 'प्रेम की बात' कविता में संयोग शृंगार का उच्छल उत्साह है। आकुल अंतर की पुकार अभी धीमी नहीं पड़ी है :

मिले नयन, उलझे आलिंगन, हुई एक, दो मादक कंपन,
बीती रात, गए प्रियतम भी, कर अंकित अंतिम दो चुंबन,
खिले पाटलों-से कपोल ज्यों रंजित अरुण प्रभात!

(उपर्युक्त, पृ. 115)

पर, यौवन की उत्ताल तरंगों में वह बहता नहीं। अब उसमें स्थैर्य आता दिखाई देता है। वह गिर-गिर कर सीख रहा है। नए अनुभव उसे नई दिशा दिखा रहे हैं। वह आत्मचिन्तन सजग हो रहा है। *प्रभातफेरी* काव्यसंग्रह के प्रथम संस्करण की भूमिका में कवि ने लिखा है : "प्रभातफेरी में आपको जिस प्रभात का संगीत मिलेगा, वह मेरे कवि-जीवन, नवयौवन और मेरे मन में पहले-पहल अंकुरित होने वाले आत्मचिन्तन का प्रभात है।" इसमें किशोर और यौवन के संधिकाल की रचनाएँ हैं। इनमें रोमांस की अभी भी प्रधानता है तो समाजोन्मुख वृत्तियाँ भी यहाँ दिखाई देती हैं। किन्तु अनुभूति की गहराई सर्वत्र पाई जाती है। इसीलिए इनके प्रेम की मादकता और मांसलता से भरे गीत मधुर और मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं।

1937-38 ई. में भी प्रेम और विरह से संबंधित जो गीत लिखे गए वे अत्यंत लोकप्रिय हुए। इनका संकलन *प्रवासी के गीत* और *पलाशवन* संग्रहों में हुआ है। भावप्रवणता और यौवनाकांक्षाओं से उद्वेलित गीतों को यहाँ लगभग विषाद और निराशा से युक्त स्वरों में उभारा गया है :

साँझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी?
क्या किसी की याद आई, ओ विरह व्याकुल प्रवासी?

(*प्रवासी के गीत*, पृष्ठ 13)

× × ×

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
आज से दो प्रेम योगी अब वियोगी ही रहेंगे!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 15)

इन गीतों में मिलन और माधुर्य-विरह की कसक में बदल जाता है और स्मृतिजन्य विषाद से प्रवासी की आत्मा विह्वल हो उठती है। यहाँ प्रेम में

तपते-सुलगते हृदय की विवशताजन्य कल्पनाएँ हैं तो रूप और सौन्दर्य के आकर्षण की मादक हँसी यानी 'छलना' के विविध रूप भी आए हैं। इनसे कवि को किस प्रकार मुक्ति मिलेगी, उसका क्या रूप होगा–इन प्रश्नों को गंभीरता से इन गीतों में उठाया गया है।

प्रवासी के गीत की रचनाओं में अनेक आशंकाओं से युक्त भावनाओं को कविताओं में ढाला गया है। कारण, मिलन के सपने ध्वस्त हो चुके हैं। परंतु उस की स्मृतियाँ उसे उद्वेलित करती हैं। उसे लगता है कि किसी शापवश ऐसा हुआ है। उसकी दुनिया अँधेरी हो गई है। अतः विरह-वेदना से उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह पूछता है :

क्या जगत में भ्रांति ही है?
एक दिन पूछा विचरती वायु से मैंने, 'कहो, क्या शांति भी है?'

(उपर्युक्त, पृष्ठ 47)

'वह मरघट का पीपल तरु' बन जाता है। निराशा और बेचैनी इतनी बढ़ जाती है कि उसे अपने साँसों का आना-जाना भी सुहाता नहीं। या कहें कि उसका जीवन स्पंदन से रहित 'बांसी के बन' के समान बन जाता है। इसलिए वह चाहता है :

कुछ तो हो, हो दुर्घटना ही मेरे इस नीरव जीवन में!
कुछ न हो तो लगे आग ही इस निर्जन बांसी के वन में!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 74)

वह मरने की बात भी सोचने लगता है। यह वह मध्यवर्गीय शहरी नवयुवक है जो अपने प्रेम और सौन्दर्य की भावानुभूतियों से आक्रांत हो अपने अंतर्मन की व्यथा से विक्षुब्ध है। बाहर, देश और समाज साम्राज्यवादी-सामंती शिकंजे में कसा हुआ है–आज़ाद होने को कसमसा रहा है। प्रवासी के गीत का युवक अंदर की भावनाओं और बाहर के सामाजिक दायित्व के द्वंद्व से द्विधाग्रस्त है :

श्रद्धा, भक्ति, बुद्धि, बल, साहस/ स्वप्न, सत्य, आदर्श, स्नेह, रस,
गुरुजन, परिजन, द्रव्य, स्वास्थ्य, यश/ कुछ भी नहीं, किन्तु आशा है
मृगमरीचिका ज्यों निर्जन की!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 91)

किन्तु संग्रह के अंतिम गीतों में स्वर कुछ बदला हुआ लगता है। अंतर्मन की पीड़ा के साथ कवि बाहर के सामाजिक संघर्षों से प्रभावित होकर गीत लिखता है। स्वयं को आश्वासन देते हुए 'डर न मन' कहकर अपने आपको हिम्मत बँधाने की कोशिश करता है। ठीक उसी तरह जैसे कोई बहुत डरा हुआ व्यक्ति निरुपाय होकर दुहराता है 'कोई डर नहीं'।

अपने समय और समाज के प्रति सचेत कवि बहुत देर तक बेचैनी की मानसिकता में नहीं रह सकता। वह बुद्धि और हृदय के द्वंद्व से युक्त अवश्य है। बुद्धि उसे समझाती–भरोसा दिलाती है कि मैं केवल वह नहीं जो उन कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त हूँ। सामाजिक क्रांति में योगदान करना भी मेरा काम है। ऐसे में निराश होने की कोई बात नहीं। 'युग बदलेगा, युग धर्म बदलेगा और कवियों का स्वर भी अधिक स्वस्थ होगा।' और 1939-40 ई. की कविताओं में स्वयं कवि नरेन्द्र शर्मा का स्वर स्पष्ट रूप से बदलता दिखाई भी देता है। उसमें वैविध्य, खुलापन और अपेक्षाकृत ठहराव मिलने लगता है। हालाँकि नरेन्द्र जी के अगले काव्यसंग्रह *पलाशवन* का प्रमुख विषय प्रकृति और प्रेम ही रहते हैं। कवि का ध्यान प्रेम से निराश हो प्रकृति की ओर मुड़ता है। वह अपने आसपास के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को खुली आँख से देखता है। ऐसे में उसकी गहन निराशा भी कम होने लगती है। हालाँकि रचनाओं में अब भी रुदन, टीस, कसक, छटपटाहट, नैराश्य पहले के समान ही हैं पर ये अब उतने प्रगाढ़ नहीं रहते। कवि ने साहसपूर्वक बाहर के जगत से अपना संबंध जोड़ा है। वह इलाहाबाद के स्वराज भवन में काम करते हुए राजनीतिक घटनाचक्रों से परिचित होता है। उनमें रुचि लेता है। यह बाह्य जगत का संपर्क उसे नवस्फूर्ति प्रदान करता है। कूर्मांचल की यात्रा के दौरान उसका प्रकृति से सीधे साहचर्य नवीन संबंधों को जन्म देता है। 'कौसानी' कविता में कहा गया है :

मन के सब शंका-शोक बुझे, हो गया विश्व फिर नया मुझे
यह नई धरा आकाश नया, यह नया लोक मिल गया मुझे!

(*पलाशवन*, गीत संख्या-19)

ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के आघातों की शृंखला में पड़े इस युवा कवि को प्रेम, निष्ठा और कर्म द्वारा जो संबल प्राप्त हुआ है, वही अंतिम निराशा के क्षणों में उसकी रक्षा करता है। प्रकृति उसे सच्ची शांति और ऊर्जा प्रदान करती है। वह प्रकृति-कूर्मांचल के वन-पर्वत-प्रांतों के बीच अपने द्वंद्वों से उबरने का प्रयास करता है। इस संबंध में कवि मित्र शमशेर का यह कथन उचित प्रतीत होता है : "कौसानी में उसकी शांति बल-प्राप्ति का एक उन्मुक्त उद्गार है, जिसमें यह कवि प्रकृति के प्रति कृतज्ञता से विभोर हो उठा है। इसी समय की और भी कविताएँ हैं; 'अल्मोड़े की युवती' और 'रानीखेत की रात' जो झिलमिली रूपराशियाँ उसके हृदय का जलता हुआ दीपक बन गई हैं, उनकी प्रतिमाएँ, लगता है, इस शांति की खोज में भी उसके साथ-साथ हैं।" (*दोआब*, पृष्ठ 72)

प्रकृति के इस संसार में कवि की आत्मा के रमने के साथ-साथ उसे अपने को प्रकृतिस्थ करने, समझने-बूझने का अवसर मिलता है। उसे व्यापक जीवन-जगत

में अपनी वास्तविक स्थिति को समझने तथा प्रकृति की सहभागिता से अपनी व्यथा, अस्थिरता एवं उदासी को कम करने में मदद मिलती है :

खुलेगा निस्सीम नभ-सा एक दिन यह शून्य जीवन भी।
यह खुला नभ, यह धुला नभ, खिल रही यह चाँदनी अनमोल
यह अमृत की वृष्टि, खिलती कुमुदिनी-सी सृष्टि दृग उर खोल,
खुली कलियों से खुलेंगे ही हमारे मोह-बंधन भी।

(उपर्युक्त, गीत संख्या 20)

पलाशवन की कविताओं में मिलन की कोई कविता उपलब्ध नहीं है, विरह भी अब क्षयिष्णु नहीं रह गया है। वियोग के अपने अकेलेपन में कवि वस्तुस्थिति को समझने तथा जीवन-संघर्षों के बीच आशा की किरणों को खोजने का प्रयास करता है :

क्यों इतने अधीर भोले मन / है ऐसा भी काहे का दु:ख?
सुनो हमारी बात, सुनो जी / अभी बहुत जीवन है सम्मुख!

(उपर्युक्त, 'मन समझाने की बात' गीत से)

पलाशवन के गीतों में वह प्रकृतिस्थ मन से प्रकृति के रम्य दृश्यों में विचरण करने लगता है। प्रकृति का चाहे कोमल रूप हो या भयावह – दोनों के चित्रण में उसे सफलता मिलती है :

कौन देश से आवेंगे पिय? / हँस-हँस कहती होंगी सखियाँ,
घेर तुम्हें आँगन में बैठी / आमी चीर उछाल बिजलियाँ।

(उपर्युक्त, गीत संख्या 3)

निस्संदेह इन रचनाओं में लोकजीवन और प्रकृति के भावग्राही चित्र कवि ने उकेरे हैं। उसने ज्येष्ठ, आषाढ़ और फागुन आदि महीनों के प्रकृति-सौन्दर्य की झाँकी अपनी कविताओं में अंकित की है। वह प्रकृति के कण-कण पर न केवल मुग्ध है वरन् स्वयं को प्रकृति के मध्य पाकर आत्मीय आनंद की अनुभूति से भर उठता है। कहीं-कहीं वह प्रकृति में अपनी मानसिक स्थितियों की छवि भी देखता है : '*एक वह तरु नीम मुझ-सा ही/अकेला खड़ा है जो सामने/पत्तियों से बौर से सब/भर गया तन, खुश हुआ मन/बौर की मधु गंध फैली/झर गए ज्यों जीर्ण बंधन।*' (सामने का नीम, *पलाशवन*) प्रकृति उसकी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है। वह प्रकृति और जीवन में एकतान हो उसमें सहभागिता करने लगता है :

मैंने देखा मैं जिधर चला
मेरे संग-संग चल दिया चाँद

× × ×

पीले गुलाब - सा लगता था
हल्के रंग का हल्दिया चाँद

इस समय लिखित नरेन्द्र शर्मा के गीतों के विषय में सुमित्रानंदन पंत ने ठीक ही कहा है : "प्रकृति संबंधी इन गीतों में कवि की प्रणयभावना उन्मुक्त उड़ान भर वियोग के सूनेपन को मुखरित करती हुई युवकों के हृदय में अपना उच्छ्वसित नीड़ बनाने में सफल हुई।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 3) प्रकृति में ही कवि का दार्शनिक रूप भी दिखाई देता है। 'एक तर्क' कविता में–'दु:ख में रहना सीख सके यदि/ तो वह सुख से भी सुंदर है!' अथवा 'सोना या क्षार' कविता में–'कौन प्रयोजन इस जीवन का? सार या कि निस्सार?' यह वह संकेत सूत्र है जो नरेन्द्र शर्मा की परवर्ती कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति बनता है।

× × ×

1940 ई. के बाद नरेन्द्र राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय हिस्सा लेते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों-घटनाओं से प्रभावित होते दिखाई देते हैं। यद्यपि उनका अंतर्मन अभी भी प्रेम और सौन्दर्य से आप्लावित है किन्तु सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबद्धताओं के चलते उसका मानसिक ढाँचा बदलने लगता है। वह साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध करते हुए जेल जाता है। सारे देश में चलते इसी घटनाक्रम से डर कर ब्रिटिश शासन कांग्रेस को सत्ता में भागीदार बनाने के लिए तैयार हो जाता है। कुछ राज्यों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल भी बन जाते हैं। किन्तु अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' की कूटनीति मुस्लिम लीग को बढ़ावा देकर हिन्दुस्तानियों को आपस में लड़ाने लगती है। 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो जाता है। भारत में असंतोष फैलता है। इससे युवा कवि अलग-थलग कैसे रह सकता था। एक ओर प्रेम और सौन्दर्य की कविता तो दूसरी ओर सामान्य जनता, खेत-खलिहान, आसपास की प्रकृति इस प्रकार की विविधायामी अनुभूतियों से युक्त गीत और कविताएँ 1942 ई. में प्रकाशित *मिट्टी और फूल* काव्य-संग्रह में संकलित हैं। उस समय के द्वंद्व को रेखांकित करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने उक्त संग्रह की भूमिका में लिखा है : " *मिट्टी और फूल* में मेरे अंत:संघर्ष को ही प्रधानता मिली है। इसके रचनाकाल में बुद्धि और भावुकता के बीच मेरे मन में जो द्वंद्व युद्ध छिड़ रहा है, *पलाशवन* में उसका पूर्वाभास मेरे पाठकों को मिल चुका है। बाहर और भीतर के मेरे विश्व की बढ़ती हुई सीमाओं ने उस संघर्ष को अधिक उग्र और व्यापक बना दिया है।" (पृष्ठ 1) अपनी भावुकता को उसने दुर्बलता कहा है। पर वह अब इससे बाहर निकलना चाहता है। स्पष्ट है कि इस अंत:बाह्य संघर्ष के बीच से निकलने में इनकी सहायता मार्क्सवाद ने की होगी। डॉ. रामविलास शर्मा ने कवि

की इस समय की मानसिकता पर लिखते हुए कहा है : "दुर्बलताएँ तो औरों में भी थीं। लेकिन नरेन्द्र ने उन्हें नाटकीय रूप देकर जीवन-मूल्य की तरह प्रतिष्ठित नहीं किया और इस संघर्ष में मार्क्सवाद के अध्ययन ने इनकी सहायता की।" (*रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि*, पृष्ठ 203) ।

सामाजिक कर्त्तव्य से प्रेरित होकर कवि में समाज की जड़ता तोड़ने तथा प्रगतिशील समाज बनाने की आकांक्षा बलवती होने लगती है। किन्तु यौवनोचित प्रणय भावना भी इनमें अंतःसलिला की भाँति प्रवहमान रहती है। बार-बार इनके मन में प्रश्न उठता-"*कुचल दूँ पाँवों तले क्या मधुर इच्छा की कली?*" (*मिट्टी और फूल*, पृष्ठ 3)। इच्छाओं का साधन बनने की अपेक्षा बुद्धि इन्हें देश-काल की आवश्यकता-सामाजिकता की ओर ठेलती है। इनके मन में यह द्वंद्व निरंतर चलता रहता है। इसलिए 'इच्छा की कली' गीत में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है :

अतः मन की मुरलिके, मत गान गा तू कामना का।
इष्ट है तेरे लिये-साधन बने तू साधना का!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 3)

साधन और साधना का यह द्वंद्व नरेन्द्र शर्मा के इस दौर की कविता की मुख्य विशेषता बनता है। वह कामनाओं से मन हटाता है। पर मन बार-बार वहीं चला जाता है, सपनों में खो जाना चाहता है :

उन पलकों की पंखुरियों पर मैं चुंबन बन खो जाता हूँ,
घनश्याम पुतलियों की रजनी में सपना बन सो जाता हूँ,
बस साँसें आती जाती हैं।

(उपर्युक्त, पृष्ठ 5)

कथनीय है कि अब प्रेमासक्ति और युगधर्म के बीच कवि में इससे छूटने की बेचैनी भी पैदा हो रही है। वह नियति के सामने समर्पित नहीं होना चाहता। वह अपने में विश्वास जगाता हुआ कहता है :

आज मरी मिट्टी के कण भी जाग रहे बन चिनगारी,
मैंने ही क्यों आज नियति के सम्मुख यों हिम्मत हारी?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 60)

कवि प्रेम-मिलन-विरह के घेरे से बाहर निकल जनजीवन के चहुँमुखी संघर्षों से अपने को जोड़ने में सफल होता है। वह आत्मालोचना करते हुए कहता है कि अब और वहीं रमे रहना बीमारी का लक्षण होगा। वह स्वयं को सावधान करते हुए कहता है :

इतना ओछा हूँ मैं–छिन में कर लेता हूँ मन छोटा!
ओखा हूँ मैं–और नहीं तो कहता क्यों जग को खोटा?
आह न जुंबिश खाने देती मेरे मन की बीमारी।

(उपर्युक्त, पृष्ठ 60)

जब चारों ओर आग की लपटें उठ रही हों, दुर्ग ढह रहे हों, गुंबद तड़क रहे हों–ऐसे में व्यक्तिगत इच्छाओं और कामनाओं की बात करना स्वार्थपरता होगी। वह नवयुग के संकेतों को समझता हुआ उसमें अपना योग देने के लिए तत्पर हो उठता है। अब वह अतृप्त कामनाओं की आकुल पुकार नहीं लगाता वरन् प्रकृति के रंग में रँगकर अपने भावों का विस्तार करता है :

कल बूँदाबाँदी से भीगी
सौंधी सुगंध वाली धरती मेरे नीचे,
ऊपर सुकुमार आरियों के सौ चँवर डुलाता नीम,
और मैं लेटा हूँ आँखें मीचे!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 14)

स्पष्ट है कि अब 'मिट्टी' यानी नए युग की चेतना पहले और 'फूल' यानी प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति दूसरे स्थान पर आ जाती है। संघर्ष की चेतना से युक्त कविताएँ *मिट्टी और फूल* कविता-संग्रह में महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। मन की दुर्बलता छोड़ कवि आशा-निराशा, बुद्धि-भावुकता, पुराने-नए, व्यष्टि-समष्टि के द्वंद्व से आगे बढ़ते हुए सामान्य जनता, उनके संघर्षों की कविता रचता है। सामाजिक परिवेश से प्रेरित हो उसे धरती मुस्कराती–आह्वान करती प्रतीत होती है :

चमकीले पीले रंगों में अब डूब रही होगी धरती,
खेतों-खेतों फूली होगी सरसों, हँसती होगी धरती!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 24)

वह देवली कैम्प जेल में बैठा देश के स्वाधीनता आंदोलन में लगे लोगों के और अपने बंदी जीवन के विषय में सोचता है। जनांदोलन में भागीदारी करने में स्वयं को असमर्थ पाकर प्रश्न करता है :

पर जो दूर गरजता सागर हम भी उसकी एक लहर हैं,
उस विशाल के कण हैं हम भी, महाकाल के एक प्रहर हैं!
गति को कब तक बाँध सकेंगे, पूछो पहरेदारों से!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 29)

स्पष्ट है कि अपने परिवेश के प्रति अब उसकी समझ निरंतर यथार्थवादी होती जाती है। कवि अपने पुराने संस्कारों से लड़कर अपने सभ्य-समाज से प्राप्त

नए संवेदनों को मूर्त्त रूप देने लगता है। *मिट्टी और फूल* की भूमिका में इसे ही उसने प्रगतिशीलता का लक्षण भी माना है। उसका कथन है : "अपनी सक्रिय शक्ति से प्रतिकूल वस्तुस्थिति को बदलने, अर्थात् उसे सामाजिक प्रगति के अधिक अनुकूल बनाने की लगन, और जर्जर संस्कारों से अपनी मुक्ति को नव निर्माण में सार्थक बनाने से ही कवि प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर हो सकता है।" कहना होगा कि अपने मध्यवर्गीय छद्म से जूझकर ही कवि अपने आत्म का विस्तार करता है। वह सामान्य जनता-किसान मज़दूरों के अधिक समीप आता है। उनके जीवन से तादात्म्य कर क्रांतिकारी गीतों की रचना करता है। जेल-जीवन में लिखे गए इन गीतों को *लालनिशान* पुस्तिका में संगृहीत किया गया है।

प्रगतिशील काव्यांदोलन में *लालनिशान* काव्यसंग्रह का ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समय नरेन्द्र शर्मा की कविता एक नया मोड़ लेती है। वे सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि को लेकर कविताओं की रचना करते हैं। *लालनिशान* का परिचय देते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है : "(*लालनिशान*) पुस्तिका की भूमिका अमृतराय ने लिखी थी। उस समय की राजनीतिक परिस्थिति, जन आंदोलन के प्रति मार्क्सवादी लेखकों का दृष्टिकोण, प्रगतिशील कविता के विकास और प्रसार में नरेन्द्र शर्मा और *हंस* का योगदान—इन सबका परिचय उस भूमिका से बहुत अच्छी तरह मिल जाता है।" (*रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि*, पृष्ठ 207) *लाल निशान* काव्य-पुस्तिका प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता श्री रुस्तम सैटिन ने, रेड स्टार पब्लिकेशंस, बनारस से प्रकाशित की थी। इसकी भूमिका में श्री अमृतराय ने कहा था कि इन कविताओं का अभिनंदन करना मैं गौरव की बात समझता हूँ। इस पुस्तक में नरेन्द्र शर्मा ने मज़दूरों और किसानों के लिए बहुत सुंदर और सरल भाषा में राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं। 'छंदों में बहाव, भाषा की सरलता और स्वाभाविक रवानी के कारण बड़े-बड़े 'अर्द्धशिक्षित' और 'अशिक्षित' समुदाय तक इन्हें गा सकते हैं।' इन्हीं में इनकी प्रसिद्ध कविता 'यकुम मई' है जो प्रगतिशील काव्यांदोलन की श्रेष्ठ कविता मानी जाती है। इस कविता में विश्वभर के मज़दूरों की बहादुरी और कुरबानी को याद किया गया है। इस कविता को सुनकर मज़दूरों में उत्साह की लहर दौड़ जाती थी। इसे सुनकर प्रसिद्ध उर्दू शायर जोश मलीहाबादी ने नरेन्द्र शर्मा से कहा था—"शर्मा साहब, आपने तो नई जान फूँक दी।" इनकी 'लालनिशान' कविता मज़दूर-किसानों की कम्युनिस्ट पार्टी के लाल झंडे से संबंधित है जो उस समय देशभर में कामगारों का नेतृत्व कर रही थी :

दुनिया के मज़दूरों आओ, सब मिल दल-बल छा जाओ,
खोलो लाल निशान! सब हो लाल जहान!

आओ सब मेहनतकश साथी लिए हथौड़ा और दरांती।
जो मेहनत से पैदा करते मालिक हैं दुनिया भर के!
खोलो लाल निशान!
हो सब लाल जहान!

सामंती, पूँजीवादी-साम्राज्यवादी सत्ता को इस प्रकार के गीत या कविताएँ अप्रीतिकर लगती थीं। मज़दूरों-ग़रीब किसानों में वर्ग-चेतना का प्रसार उन्हें किसी भी प्रकार सह्य नहीं था। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं : "*लालनिशान* पर चारों ओर से गोलियों की बौछार होने लगी। उतना ही प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और आम जनता ने उसे अपनाया।" वह कवि कल्पना नहीं, उस समय की ठोस वास्तविकता थी। भूख, ग़रीबी, अत्याचार से जनता जूझ रही थी। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादी देश रूस और फासिस्ट जर्मनी का युद्ध—उस समय सब जाग्रत-चेता लोगों का प्रेरणा-स्रोत बना हुआ था। संघर्ष करने वालों की स्वाभाविक सहानुभूति सोवियत रूस के साथ थी :

लाल रूस है ढाल साथियो, / सब मजदूर-किसानों की!
वहाँ राज है पंचायत का, / वहाँ नहीं है बेकारी,
वहाँ न लड़ती दाढ़ी-चोटी / वहाँ नहीं साहूकारी!

(लालनिशान)

इस सोवियत व्यवस्था से संसार भर के श्रमिक कामगार तथा उनसे सहानुभूति रखने वाले बुद्धिजीवी प्रभावित हो फासिस्ट शक्तियों को पराजित करने के लिए एकजुट हो रहे थे। उधर जापानी सेनाएँ चीन और बर्मा को पार करती हुई भारत के पूर्वी सीमांत पर आ पहुँची थीं । इसी पृष्ठभूमि में नरेन्द्र शर्मा यह जागरणगीत लिखते हैं :

नील लहरों के पार!/ नील लहरों के पार।
लगी है चीन देश में आग / लगी है चीन देश में आग
बढ़ी आ रही हिन्द की ओर/ जाग रे, हिन्दोस्तानी जाग।

(चीन)

वे अपनी सीधी-सरल जुबान में पूछते हैं कि हमें जापान-जर्मनी का साथ देना है या चीन-रूस का। कुछ लोग अंग्रेज़ों के सहायक थे। वे जापान-जर्मनी से सहयोग करने की बात कह रहे थे। वे मानते थे कि युद्ध के बाद अंग्रेज़ हमें आजादी देकर अपने देश वापस चले जाएँगे। ऐसा न होना था और न हुआ। जो लोग सोवियत रूस को अमरीका, फ्रांस या ब्रिटेन जैसा ही एक देश मानते थे, उनसे नरेन्द्र शर्मा ने कहा :

देश नहीं वह, राष्ट्र नहीं वह, वह मानवता की आशा।
लाल रूस के इन्कलाब की गाथा, दुनिया की गाथा!

(योम सोवियत)

रूस और उपर्युक्त पूँजीवादी देशों के संघर्ष से हमारे देश के स्वाधीनता आंदोलन को बल मिल रहा था। वहाँ के मज़दूर किसानों को वे अपने देश की स्वाधीनता बचाए रखने के लिए संघर्ष करते देख रहे थे। अमीर वर्ग को इस सब से कोई सरोकार नहीं था। इसलिए समाज के इन दो वर्गों की सच्चाई को कवि बहुत ही सटीक ढंग से समझाते हुए कहता है :

इस दुनिया में दो दुनिया हैं / जिनके नाम ग़रीब-अमीर!
पर सोने के नगर बसे हैं/ मिट्टी ही का सीना चीर!
देश-देश में मुफ़्तखोर हैं/ देश-देश में मेहनतकश,
मुफ़्तखोर चालाक चोर/ पर वही कमाते संपत जस!

× × ×

दीन भी उनका, दुनिया उनकी/ उनकी तोप और तलवार,
उनके अफ़सर और गवर्नर/ उनके ही साहब और सरकार

(*रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि* से उद्धृत, पृष्ठ 214)

पूँजीवादी व्यवस्था पैसे वालों की पैसे वाले लोगों के लिए काम करने वाली व्यवस्था है। जनता को उनसे आगाह करना कवि अपना कर्तव्य समझता है। नरेन्द्र शर्मा ने तत्कालीन परिस्थितियों में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए इन कालजयी कविताओं की रचना की।

जेल से छूटने के बाद जीवन के ऊसर में भटकते हुए ये फ़िल्मों में गीत लिखने के लिए बंबई बुला लिए गये । यहाँ से इनकी राजनीतिक कविताओं के लेखन का युग समाप्त हो जाता है। किन्तु समाज के प्रति उसकी प्रतिबद्धता ज्यों की त्यों बनी रहती है। अगस्त, 1942 ई. में काशी में लिखी उनकी कविता 'यौवन के आँसू' में कवि अब यौवन के आँसुओं से बाहर निकल जीवन की कठोर वास्तविकताओं से साक्षात्कार करता है तथा धीरे-धीरे पृथ्वी पर पैर जमाने का प्रयास करता है। वह पृथ्वी और जीवन-जगत की व्यापकता के दर्शन करता हुआ कहता है :

वसुंधरा को छोड़, मोड़ मुख / मिट्टी की उर्वर प्रतिमा से
स्वप्न-परी में मोह बढ़ाया, / गुन गाए नभ की महिमा के।
कब देखा सौन्दर्य, छिपा जो / मधुर धरा के रोम-रोम में!

(हंसमाला, पृष्ठ 54)

बंबई का एकाकीपन और सागर का किनारा उन्हें जीवन को समझने में मदद करता है। मन तो भटकता ही है। पर अधिक भटकना स्वास्थ्य का लक्षण नहीं। वैसे भी स्थितियाँ सर्वदा अपने वश में कहाँ होती हैं। इसीलिए कवि कहता है :

तट पर ज्यों लहरें, मन-पंछी/ कब तक सिर पटकेगा जाने!
यह मेरा एकाकी जीवन/ कहाँ-कहाँ भटकेगा जाने!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 55)

कवि नरेन्द्र शर्मा के काव्यसंग्रह *हंसमाला* (1946 ई.) की कविताएँ पढ़ते हुए स्पष्ट होता है कि अब वह चंचलता और द्वंद्व को छोड़ स्थिरता और परिपक्वता की ओर बढ़ता है। इस संग्रह की अनेक कविताओं में वैयक्तिक जीवन के अतिरिक्त मानव प्रेम, स्वातंत्र्य चेतना, समसामयिक घटनाओं के वास्तविक चित्र, राष्ट्रप्रेम और अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों के चित्रण काव्यवस्तु में आते वैविध्य के सूचक हैं। कवि जीवन-गंगा की विराटता की ओर उन्मुख होता हुआ कहता है :

बनती संकीर्ण सांप्रदायिक/ फिर क्रांतिकारिणी क्षुब्ध बुद्धि,
ज्यों अग्नि राख में खो जाए/ कर दीप्त तेज से स्वर्ण-शुद्धि!
तब चिता भस्म को नहलाती/ वह विष्णुपदी बनकर आती
धरती को उर्वर कर जाती / तट पर शत नगरी बसवाती-
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 15)

स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व ही हिन्दू-मुस्लिम दंगे पूरे भारत में फैल जाते हैं। सांप्रदायिक विद्वेष उस समय की मुख्य समस्या बन जाती है। कवि ने इसे त्यागने तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम और नैतिकता स्थापित करने की दुहाई इस समय की अपनी कविताओं में दी है। इस दृष्टि से 'हिन्दू-मुसलमान' और 'तुला' नामक कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। कवि प्रश्न उठाता है कि ज्ञान-विज्ञान के आलोक में नए फूल खिलाने की आवश्यकता है। ख़ून बहाने या हिन्दुओं को बोदा, मुसलमानों को देशद्रोही कहने की नहीं। कवि ने उनसे इंसान बनने की अपील की है, दोनों को एक-दूसरे का सम्मान करने की बात कही है :

जनक्रांति जगाने आई है, उठ, हिन्दू! उठ ओ मुसलमान!
संकीर्ण भेद-संदेह त्याग, उठ महादेश के महाप्राण!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 18)

स्पष्ट है कि कवि अब अपनी अंतर्मुखी धारा से बाहर निकल आया है। देश-दुनिया के घटना-क्रमों पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता है। वह बंगाल के

अकाल पर कविताएँ लिखता है। 'प्रलय की प्रसादी' और 'क्षुधा सिंधु' युगधर्म से जुड़ी प्रमुख कविताएँ हैं। 'प्रलय की प्रसादी' कविता नागर जी के उपन्यास 'महाकाल' की भूमिका के रूप में लिखी गई है तो 'क्षुधा-सिंधु' में अकाल के तांडव-नृत्य से ध्वस्त मनुपुत्रों का वर्णन हुआ है। 'चेतावनी' कविता में अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों का अवलोकन करते हुए 'लाल सितारे' के उदय से विश्व मानवता के हित जुड़े होने को बताया गया है। इसी प्रकार 'जागरण-नयन-जावा' कविता में पराधीन देशों को स्वाधीनता-प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हुए कवि कहता है :

आरक्त जागरण–नयन खुले/ बीती युग-युग की अमा निशा!
स्वातंत्र्य-सूर्य के रश्मि-जाल से/ ज्योतित है नैॠत्य दिशा!
भारत-भू का सांस्कृतिक वत्स/ यवद्वीप दुंदुभी बजा रहा–
जागो, दासों के महाद्वीप!/ अब जगी मुक्ति की महातृषा!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 46)

इन सबके बावजूद कवि अपनी प्रेमव्यथा की अंत:सलिला को एकदम कैसे छोड़ दे। फिर उसके हृदय का मीत उससे छूट गया है। मर्माहत कवि उसे याद करते हुए लिखता है :

क्यों न मैं आँसू बहाऊँ? क्यों न मैं गाऊँ विरह के गीत?
हृदय मानव का हृदय है, खो दिया मैंने हृदय का मीत!
क्यों न मैं आँसू बहाऊँ? क्यों न मैं गाऊँ सिसकते गीत?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 57)

यह तथ्य है कि अब नरेन्द्र जी ने इस प्रकार के गीत कम लिखे हैं। कवि गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर चुका है। उसे भौतिक बाधाएँ परेशान करती हैं। बंबई पहुँचकर ऐसा जान पड़ता है कि भौतिक संपदा की 'कनक तीलियों' ने कवि-उर-सारिका को मौन कर दिया है। वह इस जड़ता और गतिहीनता से मुक्ति चाहता है। इस प्रकार *हंसमाला* की कविताएँ जीवन की व्यापकता और विविधता के साथ-साथ विकट अनुभवों को भी सरल भाषा में व्यक्त करती है। किन्तु अब भी इस संग्रह की कविताओं का मुख्य स्वर देश दशा-स्वाधीनता ही है। कवि ने कहा भी है : "*हंसमाला* नए युग की झाँकी के हेतु पंखों में उत्साह और आतुरता लिए है और उसकी आँखों में है युग नवागंतुक के प्रति सदाशा और शुभाकांक्षाएँ।" स्वाधीनता-प्राप्ति के थोड़े समय बाद ही ये सदाशाएँ धूमिल पड़ने लगती हैं। आदर्श टूटने लगते हैं। मानव-मूल्यों का हनन होता दिखने लगता है। गाँधी जी की हत्या कर दी जाती है।

रक्तचंदन महात्मा गाँधी की हत्या से प्रेरित होकर लिखी गई कविताओं का संग्रह है जो 1949 में प्रकाशित हुआ था। इस संकलन में छह कविताएँ

समय-समय पर गाँधी जी की मृत्यु के पूर्व—गाँधी जी के कामों से प्रभावित होकर लिखी गई थीं। शेष उनके निधन के चार-पाँच महीने बाद तक लिखी गई हैं। इन कविताओं में भावांजलि ही अधिक है। जैसा कि कहा गया है कि कवि नरेन्द्र शर्मा गाँधी जी के कृतित्व से प्रभावित होकर पहले से ही कविताएँ लिखते रहे थे। 1946 ई. में लिखित 'अहिंसा क्रांति' कविता में उन्होंने गाँधी को अहिंसा-क्रांति की नई शैली को जन्म देने वाले व्यक्ति के रूप में याद किया :

क्रांति यों जग में हुईं अब तक कई,
पर अहिंसा-क्रांति की संज्ञा नई, शैली नई!

(*रक्तचंदन*, पृष्ठ 13)

ऐसे महापुरुष के ख़ून के प्यासे हिन्दू-मुसलमान दोनों बने हुए थे। विद्वेष से पैदा सांप्रदायिक उन्माद, उसकी आग हमें ही जला रही थी। हिन्दुत्ववादी राष्ट्रवाद कृतघ्न और घृणित कुकर्म कर रहा था। कवि प्रश्न करता है :

राष्ट्रपिता बापू की हत्या! घटना यह सामान्य नहीं है!
कैसा यह हिन्दुत्व, हुआ पैदा जिसमें उनका हत्यारा?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 33)

इसीलिए कवि 'सावधान' कविता में इस नए हिन्दुत्व के प्रति जनता को सावधान करता है :

यह नूतन हिन्दुत्व! चेत, हिन्दू, ऐसे हिन्दू से!
वयोवृद्ध प्रिय राष्ट्रपिता के, हत्यारे की बू से!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 30)

इसकी 'बू' बढ़ती ही जाती है। रुकती नहीं। इसे शीघ्र ही रोकने की आवश्यकता पर बल देते हुए कवि ने इस संग्रह की अनेक कविताओं में इसके प्रति चेतावनी दी है। अन्यथा महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों की हत्या होती रहेगी—ऐसे में सामान्यजन की तो बात ही क्या? कवि महात्मा गाँधी के गुणों को याद करते हुए कहता है :

तोड़े सदियों के पाश सड़े, पोहचों पर पहने लौह कड़े,
आज़ाद हुए, आज़ाद हुए उससे भी जिसने किए बड़े!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 73)

'जो हुआ है, वही है होना' की नियति को कवि अभी नहीं मानता। उसने तो गाँधी से स्वावलंबन का पाठ सीखा है और अपने कामों के लिए स्वयं को ज़िम्मेदार माना है :

स्वेच्छा को देवेच्छा कहना, यह नहीं मुक्ति,
यदि बने स्वावलंबी मानव, तो मिटे अगति!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 68)

गाँधी जी की मृत्यु के पाँच-छह महीने बाद लिखी गई नरेन्द्र शर्मा की 'शांतिचंद्र' कविता थोड़ा थिराकर लिखी गई कविता है जिसमें गाँधी की मृत्यु को भोलेपन की मृत्यु कहा गया है। कवि मानता है कि समाज में नैतिकता के तंतु कमजोर हो टूटते चले जा रहे हैं। ताकतवर और कमजोर की खाई बढ़ती जा रही है :

दानव-युग लौहचरण धरता आता अधीर,
टूट गया स्वर्ग - सेतु दूर स्वर्ग - मर्त्य-तीर!
छिड़ता रण घमासान पोषित औ शोषित में!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 75)

कुछ आलोचकों ने इन कविताओं को नीरस, अनुभूति-शून्य माना है। किन्तु इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ भावप्रवण तथा युगसत्य को द्योतित करने वाली हैं। यह कहना उचित ही होगा कि इन कविताओं के माध्यम से कवि की मानववादी दृष्टि पुष्ट हुई है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में नरेन्द्र शर्मा की कविता दैनिक जीवन से निरंतर मुठभेड़ करते हुए जन्म लेती है। इसलिए भी उसका स्वर वैविध्यपूर्ण है। कवि अब भावना की अपेक्षा विचार से अधिक काम लेता है। जीवन के रहस्यों में डूबता-उतराता, अपनी सामयिक स्थितियों से आँखें दो-चार करता, देश के स्वातंत्र्य आंदोलन में लगी विशाल ऊर्जा का स्मरण करता दिखाई देता है। स्वाधीनता से पहले और बाद के रक्तपात को देखकर नवीन संग्रह 'अग्निशस्य' (1950 ई.) में कवि कहता है :

श्वास-श्वास में द्वंद्व छिड़ा है
जो न निमिष भर थमता!
रक्तपात से नहीं रुकेगी
गति पर मानवता की!

(*अग्निशस्य*, पृष्ठ 10)

स्वाधीनता के इस युग में उसे नई मानवता के उभार के दर्शन होते हैं। भले ही, इस समय कुछ देर के लिए विश्व में क्लांति के दर्शन होते हों, भले ही इसे दूर करने के लिए 'पग-पग पर लड़ाई लड़नी पड़' रही हो, कल इसी से क्रांति फूटेगी—ऐसा कवि को पूरा विश्वास है। जीवन की अंतत: जीत होगी। मनुष्य ही इसे संभव करेगा :

गीत का दीपक सँजो दो / दीप्त जागृति के स्वरों से!
उर जलदपट पर लिखो फिर / दामिनी के अक्षरों से!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 51)

कथनीय है कि अव कवि रोमानी भावलोक की बजाय जीवन की गहरी समझ से युक्त दिखाई देता है। वह सुख को दुःख की गोद का शिशु बताता है। कवि सुचिंतित हो कहता है जिस ऊर्जा से मनुष्य जाग्रत-चेतन हुआ है, वही संपूर्ण सृष्टि में फैली हुई है। पार्थिव शरीर भी उसी की क्रीड़ास्थली है। धरती, अग्नि, आकाश, जल, चंद्रमा, पवन आदि उसी के अंश हैं। कवि अनेकश: उसकी वंदना करता है। कवि अग्नि को चेतना, ऊर्जा, जीवन का पर्याय मानता है। 'अग्निशस्य' तथा 'अग्निदेवता' कविता में वह कहता है :

जल ने जीवन को जन्म दिया, / पृथ्वी ने मानव गोद लिया,
पर पहले पहल अनल ने ही/ मानव को ऊर्ध्वोन्मुखी किया!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 39)

यह ऊर्ध्वोन्मुखी मनुष्य ही नए संसार का निर्माण करेगा। यह दृष्टिकोण *अग्निशस्य* की अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है। सांप्रदायिक विद्वेष के वातावरण में कवि सद्भाव और प्रेमपूर्ण क्रांति का हामी बनता है। खूनी क्रांति स्थायी नहीं होती :

अंशसत्य की खंडक्रांतियाँ होतीं बिना विचारे
व्यापक प्रेम बिना संभव कब पूर्ण क्रांति प्रियदर्शिनी?
संघर्षण से नहीं उपजती, ज्वाला वह मधुवर्षिणी!
युद्धों के आह्वान अनगिनत, उसे बुलाकर हारे!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 81)

कुछ कविताओं में नारी जाति के प्रति अन्याय पर भी उसकी संवेदना व्यक्त हुई है। नारी सदा से पुरुषों के हाथ का खिलौना बनी रही है। कवि की इच्छा है कि नवयुग में नारी 'चैतन्य लपट' बने :

बनो पुन: चैतन्य-लपट, ओ भस्मावृत्त चिनगारी
अमिय-हलाहल-मदमयनयना, तुम भारत की नारी!

× × ×

महिषासुर-मर्दिनी बनो फिर, भुवन विमोहिनी माया!
त्यागो पार्थिव रूप, नारि, फिर करो सिंह असवारी!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 65-66)

प्रकृति के सहज सामान्य रूप के साथ-साथ *अग्निशस्य* में उसका रहस्यात्मक चिन्तनपरक रूप भी प्रकट होता है। वह ग्रामजीवन से जुड़ी दिखाई देती है। कहीं

कवि 'क्रांति की घटा', 'सृजन जल' और 'चातक मनुष्य' (पृष्ठ 80) की चर्चा करता है तो कहीं 'संध्यांत', 'सांध्यवेला' में दिन ढलता देखकर अपनी प्रेयसी की स्मृतियों में खो भी जाता है। 'युग की संध्या में कृषक वधू' का यह चित्र पर्याप्त चर्चित रहा है :

युग की संध्या कृषक वधू-सी/ किसका पंथ निहार रही?
उलझी हुई समस्याओं-सी/ बिखरी लटें सँवार रही!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 100)

इसी क्रम में देश की वास्तविक दशा, देश की स्वाधीनता, पोषितों द्वारा शोषण, पराधीनता की शृंखला टूटने पर देश के स्वार्थी एवं विघटनकारी तत्त्वों का सक्रिय हो जाना इनकी कविताओं में स्थान पाते हैं। 'अग्निशस्य' संग्रह की अंतिम कविता 'गृद्ध लगे मँडराने' में युद्धकालीन स्थिति में मनुष्य की अधम से अधम स्वार्थी वृत्ति का मार्मिक चित्रण हुआ है जो आज के संदर्भ में और अधिक प्रासंगिक है :

राष्ट्र धर्म के बिल्ले लेकर घर-घर बँटवाएगा,
विश्व शांति के लिए गरजती तोपें ढलवाएगा,
बारूदी विष भरी सुरंगें पथ में बिछवाएगा,
कभी न जाएगा जिस पथ से हमको भिजवाएगा!
लगा बावली दुनिया को वह राहें नई सुझाने,
जब से भावी महायुद्ध की ख़बर लगी है आने!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 126)

× × ×

अग्निशस्य के बाद की कविताएँ पुराने ढर्रे को छोड़ जीवन के गहरे प्रश्नों—जन्म-मरण, क्षण-भंगुरता आदि को अपना विषय बनाती है। प्रेम और प्रकृति के प्रति आकर्षण उसमें अब भी है पर उसमें अब अव्यक्त सत्ता के संकेत उभरने लगते हैं। यह नरेन्द्र शर्मा की काव्य-विकास-यात्रा का तीसरा चरण कहा जा सकता है। अपने अगले काव्यसंग्रह *कदलीवन* (1953) के लेखकीय 'निवेदन' में कवि ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा है : "जैसे जीवों को आधार देने वाली पृथ्वी का हृदय अंतरिक्ष में स्थित है, वैसे ही ज्वालाओं में तपते हुए मिट्टी के हृदय के किसी अज्ञात कोने में कदलीवन विकसित होता फलता-फूलता रहता है। स्थूलकाय विशाल बरगद ही सच्चा है और उसका सूक्ष्म-सा नाचीज़ बीज झूठा है, मैं इस बात को नहीं मानता।" स्पष्ट है कि अब कवि की दृष्टि सूक्ष्म से 'नाचीज़ बीज' पर टिक रही है। अब कवि को भौतिकवादी विचारधारा से पार बसाती नहीं

दिखती। वह ईश्वरोन्मुख हो भाववादी विचारों की ओर मुड़ जाता है। इस तीसरे चरण की कविताओं को कुछ विद्वानों ने अकाव्यात्मक मानते हुए नीरस कविताओं की श्रेणी में रखा है। किन्तु इनकी अनेक परवर्ती कविताएँ दर्शाती हैं कि अभी इनकी कविताओं में अनुभूति का ताप बचा हुआ है :

नवयुग की दुल्हन बैठी है, खँडहर हुई हवेली में
नई सुबह हँसती है उसकी, मेंहदी लगी हथेली में!

(*कदलीवन*, पृष्ठ 15)

× × ×

हरहराता सरसराता वन,
थरथराता चरमराता वन
पवन बन आई प्रभंजन
संग लाई घन!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 58)

× × ×

हड़बड़ा रहे, लड़खड़ा रहे, / गड़गड़ा रहे, काले पहाड़!
यह किसकी डोली लाए हैं/ बादल, काले-काले कहार?
वह कौन, बिजुरिया नाच रही/ जिसकी मुंदरी के हर नग पर?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 60)

प्रकृति संबंधी अन्य कविताओं में वैचारिकता के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। समाज में जीवन मूल्यों का विघटन देख कवि अपनी कविताओं के अंदर नए मूल्यों को तलाशने की कोशिश करने लगता है। किन्तु यहाँ अध्यात्म का सीधा वाचन न होकर कवि उसे जीवन और कर्म के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। *कदलीवन* संग्रह की अनेक कविताओं में इसके संकेत देखे जा सकते हैं :

लघु बीज और पादप विशाल, / हरियाला जल, पल्लवित ज्वाल!
मृत्ति का मूल, तन आल-व्याल, / वह शाखाओं का शिखर-जाल!
हर पत्र-पत्र में दिखता है / नव रूप दिव्य सर्वेश्वर का!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 76)

इसके अतिरिक्त मनुष्य के क्षणभंगुर जीवन और जगत् की नश्वरता के चित्र भी *कदलीवन* की कविताओं में मिलते हैं। मिट्टी और कुंभकार का प्राचीन रूपक इनकी कविताओं में स्थान पाने लगता है। इनकी सांकेतिकता भी स्वतः स्पष्ट है :

पाँवों ने गूँदी थी मिट्टी/ हाथों ने गढ़ दिया घड़ा,
कुंभकार की अँगुलियों ने/ छू-छू कर, कर दिया बड़ा!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 24)

× × ×

काया है क्षणभंगुर माटी,
केवल आनी-जानी छाया!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 28)

'कच्चाधागा' नामक कविता में जीवन को कच्चे धागे के समान बताया गया है। यह जब तक टूटता नहीं–तभी तक उसका चमत्कार है। पाँच पंख वाला पंछी–प्राण की उड़ान तो निश्चित है :

वह पाँच पंख का पंछी है,
है जिस पंछी का नाम प्रान!
जब तक न हुई, तब तक न हुई,
पर निश्चित है उसकी उड़ान!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 37)

ये जीवन के शाश्वत सत्य हैं। अब कवि का ध्यान बार-बार इस ओर जाता है। उसका मत है कि मनुष्य कार्य करने का अधिकारी है, फल की चिन्ता उसका काम नहीं। इसलिए अपने भविष्य से अनजान मनुष्य को जीवन और कर्म की गति तो मिली है, पर दिशा नहीं। दिशा ढूँढ़ना किसका काम है? इसका संकेत कवि ने नहीं किया है :

दिशा नहीं दी, केवल गति दी!/ दुर्बल पौरुष, प्रबल नियति दी!
मति अति क्षुद्र, समुद्र प्रकृति दी! / समरसता का सार बता कर,
दिया विषमता का संसार! / धरकर मेरे पंख धरोहर
कहा कि तज दे मानसरोवर!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 36)

विचित्रता यह है कि समरसता को जीवन-सार बताया गया है पर उसे साक्षात्कार करना पड़ता है विषमता से। साथ ही व्यथा-वेदना को शाश्वत नीड़ प्रदान कर दिया गया है। नियति वृक्ष पर लगातार प्रहार कर रही है :

करती है प्रहार, बार-बार कुठार से
कटता ही नहीं पेड़, नियति लकड़हारिन है,
काल की कुठार कठिन, जीवन का वृक्ष है।

(उपर्युक्त, पृष्ठ 82)

कवि ने जीवन में बार-बार मर्यादा और अनुशासन बनाए रखने की आवश्यकता दर्शाई है। जीवन-मरण, दुःख-वेदना, मोह-ममता के साथ-साथ मानवतावादी मूल्यों पर अपनी आस्था प्रकट की है। हालाँकि दुनिया की गति देखकर उसे घोर निराशा होती है। फिर भी कवि को जीवन के प्रति आस्था है। उसे सृजनशीलता पर भरोसा है :

उर्वर है किन्तु अभी
धरती का उर उदार
मानव की मानवता अभी नहीं वंध्या है।

(उपर्युक्त, पृष्ठ 40)

स्पष्ट है कि *कदलीवन* की कविताओं में वस्तुजगत और भावजगत परस्पर सापेक्ष ढंग से सामने आते हैं और अधिकांश में कवि प्रगतिशील विचारों को बचाने में समर्थ होता है। पर दार्शनिकता का प्रभाव इनकी कविताओं पर गहराता जाता है। वैचारिकता प्रधान होती जाती है।

इनकी इसी प्रवृत्ति का विकास इनके अगले काव्यसंग्रह *प्यासा निर्झर* (1954-64 ई.) की कविताओं में होता दिखाई देता है। इनमें कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि, चिन्तन-मनन और वैविध्यपूर्ण अनुभव से कविताओं को नया स्वरूप मिलता है। कवि अपने स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति केन्द्रित, संकीर्ण-स्वार्थी समाज के साथ अपना सामंजस्य नहीं बैठा पाता। इसीलिए *प्यासा निर्झर* (1964 ई.) की भूमिका में वह कहता है : "सुधी समाज में पाठक और कवि सहज संपृक्त रहते हैं। पर हमारा समाज आज सौमनस्य विहीन और विघटित है।" दरअसल स्वाधीनता प्राप्ति के बाद कवि जिस रूप में समाज के बदलने की कल्पना कर रहा था, मूल्यों के विकसित होने, सपनों के साकार होने की सोच रहा था--पूँजीवादी व्यवस्था में वह सब ध्वस्त हो गया। कवि उनसे लड़ने-जूझने की बजाय कविताओं में जहाँ-तहाँ क्षोभ व्यक्त करता है। युग के बदलने, ज्ञान-विज्ञान समन्वित सर्वजन हिताय होने की बजाय बढ़ती स्वार्थपरता समाज में घुन लगा रही है। ऐसे में कवि क्या करे? कवि उक्त संकलन की भूमिका में प्रश्न करता है: "विश्व को कवि अपने हाथ का आँवला समझे या वह स्वयं विश्व-पुरुष के हाथ का आँवला बने, यह प्रश्न भी मन में उठता है। मुझे तो विश्व-पुरुष के हाथ का आँवला बनने में ही कल्याण दिखाई देता है।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 6) ऐसे में इनकी कविता की प्रकृति भी बदलती है। नरेन्द्र शर्मा कविता की प्रकृति को अविभक्त अद्वैत और परिपूर्ण ईश्वर से जुड़ा मानते हैं। उससे जीवन-जगत के संबंधों को जोड़कर वे उसे अपनी कविता में स्थान देते हैं। 'प्यासा निर्झर' शीर्षक कविता की पहली पंक्ति में ही कवि कहता है : "*अपने सिवा और भी कुछ है, जिस पर मैं*

निर्भर हूँ" ईश्वर के प्रति निष्ठा बारंबार दोहराने के कारण कविता का पूरा वातावरण बदल जाता है। कविता में अध्यात्मचेतना और नव रहस्यवादी प्रवृत्ति प्रमुख होने लगती है। 'युगल किशोर' कविता में अपने और ईश्वर के संबंध में कहा गया है :

एक यहाँ मैं, जो हल्दी की एक गाँठ पर पंसारी,
एक वहाँ वह, नंदनवन में कौतुकरत अव्यवहारी!
एक यहाँ मैं, सोते-जगते काम-काज में लगा हुआ,
एक वहाँ वह, चिद्विलास में लीन, निरंतर जगा हुआ!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 49)

इसी कविता में कवि ईश्वर और जीव के संबंध को केन्द्र और परिधि, प्राण और शरीर का संबंध बताता है। 'पनिहारिन' कविता की पनिहारिन तथा 'रथवान' कविता की ब्याहली-आत्मा के प्रतीक रूप में चित्रित हुए हैं। इस नाशवान् संसार में मिट्टी की माया है, उसे त्यागने की चर्चा 'प्यासा निर्झर' की अनेक कविताओं में हुई है। 'माया' नामक कविता में भक्त कवियों के समान माया की शक्ति का बखान किया गया है पर यह माया हरि की दासी है। इसलिए जीव को चाहिए कि वह इसे इसी रूप में स्वीकारे। अन्यथा वह उसे नाच नचाती हुई प्रभु के पास ले जाएगी :

अपनी समझ, जिसे हर कोई / करता रहता मेरी-तेरी!
वह अनेक जन-मन-विलासिनी / एक मात्र श्री हरि की चेरी!

× × ×

मन में हरि, रसना पर षड्रस/ अधर धरे मुसकान सुहानी,
हरि तक उसे नचाती लाती, / हरि की जिसने बात न मानी!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 128-29)

कवि आत्मवादी भावबोध की कविताओं के साथ-साथ देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना से समन्वित कविताएँ भी लिखता रहा है। चीनी आक्रमण के समय 'नए चीन के नाम' कविता में चीनी आक्रमण और चीन देश की भर्त्सना करते हुए कवि कहता है :

कैसे मानें, तुम शलभ / शांति की शीलवती बाती पर!
तुम चढ़े चले आ रहे/ हमारी धरती की छाती पर!
क्या साम्यवाद है यही? / याकि नखदंतवाद, प्रतिवासी?
नीचा दिखलाकर हमें,/ चाहते बनें एशिया दासी!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 217)

इनके अंतिम दो संग्रहों *बहुत रात गए* (1967) और *मुट्ठी बंद रहस्य* (1979 ई.) में इन्हीं प्रवृत्तियों का विकास हुए है। जीवन की कठिनाइयाँ, व्यक्ति के स्वाभिमान को तोड़ने वाली स्थितियाँ, संघर्ष, निराशा आदि इनकी कविता में प्रमुखता से आए हैं। कवि का जुझारूपन, संभवत: वय के कारण, शिथिल पड़ता जाता है। चारों ओर संकीर्ण स्वार्थ और व्यक्तिवाद के बढ़ने से कवि चिन्तित हो ईश्वर की शरण में शांति पाता है। बुद्धि और तर्क उसे सहारा नहीं दे पाते। ज्ञान-विज्ञान-तकनीक भी पैसे वालों की सेवा में लगे हैं। सामान्य जनता उसी दल-दल में धँसने के लिए अभिशप्त है। ऐसे में एकाकी कवि अभावग्रस्त और नारकीय जीवन जी रहे लोगों के पक्ष में, उनसे सहानुभूति रखता हुआ अपनी सर्जना में लगा रहता है। वह देश की मूल समस्याओं को संबोधित करता हुआ 'राष्ट्र और व्यक्ति' कविता में लिखता है :

आज हिल रही राष्ट्र की नींव,
व्यक्ति का स्वार्थ न टस से मस!
राष्ट्र के सिवा सभी स्वाधीन,
व्यक्ति-स्वातंत्र्य अहम् के वश!

(बहुत रात गए, पृष्ठ 22)

जैसा कि कहा गया–स्वाधीनता के बाद समाज में जो समानता का सपना देखा गया था, वह पूँजीवादी व्यवस्था के चलते पूरा नहीं हो पाया। कवि ने अपने *बहुत रात गए* काव्य-संग्रह के 'निवेदन' में इसका उल्लेख भी किया है : "आधुनिक कवि ने व्यक्ति और समाज के स्वरूपांतर का जो स्वप्न देखा था, वह वास्तविकता का रूप कभी न ग्रहण कर सका। देशकाल़-सापेक्ष कवि का यही रोना है। ....स्वदेश में कवि का संदेश नहीं सुना जाता, इसलिए स्वदेश से कालज्ञ कवि नाता तोड़ ले, इसे मैं भ्रांत धारणा मानता हूँ। .... मैं तो साग्रह स्वदेशी और साधारण बनने या बने रहने का पक्षपाती हूँ।" (पृष्ठ 8-9) पर पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था ने व्यक्ति के अंदर विशिष्ट बनने का छद्म पैदा कर दिया है। इसे समझते हुए अपनी 'शेक्सपियर' नामक कविता में कालजयी नाटककार को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कवि कहता है :

है मूलमंत्र साम्राज्यवाद, हम उपनिवेश,
तुम नेता, हम अभिनेता हैं सब नारी-नर!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 26)

ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति का मनुष्य बने रहना या संवेदनशील बने रहना अत्यंत कष्टप्रद है। पर उसके बिना व्यक्ति या समाज किसी की कोई गति नहीं

है। संवेदनशीलता के साथ मनुष्य में जब दृढ़ इच्छा शक्ति होती है तभी क्रांति का पथ प्रशस्त हो पाता है। जैसा कि स्वाधीनता आंदोलन के दौर में यह संभव हुआ था। पर अब स्थितियाँ बदल गई हैं। कवि उसी क्रांतिकारी स्वभाव का स्मरण करते हुए पूछता है कि वह क्रांतिकारी स्वभाव कहाँ गया? 'राष्ट्र और व्यक्ति' कविता के अंत में वह उद्बोधन करते हुए कहता है :

क्रांतिकारी बलिदानी व्यक्ति / बने बैठे हैं कब से बुत!
कह रहे हैं दुनिया के लोग / भिखारी हैं भारत के सुत!
क्यों न हम स्वाभिमान से जिएँ?/ चुनौती है प्रत्येक दिवस!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 24)

देश की स्थितियाँ इतनी जटिल हो गई हैं कि कवि को इनसे पार पाना कठिन लगने लगता है। कुछ लोगों के पास अथाह भौतिक समृद्धि है और अधिकांश में बेकारी—ऐसे में समाज के अंदर प्रेम का मधु कम होता जाता है। आत्मीयता का अंश क्षीण होने से आदमी-आदमी के बीच अजनबियत बढ़ती जाती है। जीवन में तनाव, द्वंद्व आदि अनेक प्रकार की परेशानी उसे किसी काम का नहीं छोड़ती। प्रेम ही ऐसी ऊर्जा बचती है जो मनुष्य को कर्म के लिए प्रेरित करती है :

मधु की एक बूँद से भी यदि / जुड़ न सके मन का अपनापा,
क्यों दे श्रमिक पसीना, सैनिक/ लहू, करे क्यों जाया जापा!

(उपर्युवत, पृष्ठ 68)

ऐसे में कवि का काम और कठिन हो जाता है। उसे अपने जीवन को चलाए भी रखना है, उसके लिए उद्योग भी करना है—'*रोज़ का धंधा, कमा-खा रोज़ का सोना*'। परिवेश में जो कुचक्र चल रहे हैं—उनसे टकराना भी है। पर वह उल्लेखनीय कुछ कर न सका--इसका उसे पछतावा है :

मैं उल्कामुख कवि बन न सका
इस बस्ती के डर से,
घरफूँक तमाशा क्या देखूँ
है ममता इस घर से!

(उपर्युवत, पृष्ठ 85)

भौतिक दृष्टि से असफल होने पर कवि निराश भी होता है--'*दुनिया अदय रही, दर-दर की मैं ठोकर खाता*'। ऐसे में कभी वह मृत्यु की कामना करने लगता है :

मेरी मिट्टी को समेट लो,
रोता है शिशु-जीव, भेंट लो!
टूट चुका हूँ मैं कब का, माँ, मुझसे तुम न तनो!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 82)

स्पष्ट है कि प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति कवि नरेन्द्र शर्मा की काव्यानुभूति का मुख्य आधार होते हुए भी देश या राष्ट्र-प्रेम से उसकी दृष्टि कभी नहीं हटी है। इसी प्रकार युवा मन का आवेग भले ही थिरा गया हो किन्तु प्रेम का महत्त्व उसकी दृष्टि में कभी कम नहीं हुआ। स्त्री-पुरुष का सामंजस्य किस प्रकार जीवन में सहायक होते हैं, उनका पारस्परिक प्रेम किस प्रकार जीवन को सहज बनाता है, इसकी अनुगूँज इनकी अंतिम दौर की कविताओं में भी विद्यमान रही है :

रह जब तलक साँस एकाध भी,
रहे सुधि हृदय में, रहे साध भी,
न जाए जिया, मुख निहारे बिना!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 57)

कवि भारतीय जनमानस में हावी होती जा रही अंग्रेज़ियत पर भी प्रहार करता है। वह पश्चिमोन्मुखता और व्यक्तिवादी-स्वार्थी मनोवृत्ति पर व्यंग्य करता है। साथ ही, सबको आत्मनिर्भर बनने का संदेश देता है। समानता और स्वातंत्र्य की रक्षा भी तभी की जा सकती है। 'सोवियत भूमि' नामक कविता में कवि ने तत्कालीन सोवियत संघ की स्वर्णजयंती पर साम्यवाद के प्रति अपने प्रेम को वाणी देते हुए माना है कि सच्चे प्रेम और श्रम से ही रामराज्य आ सकेगा :

मानव का सहयोगी श्रम या मानव के मन का मुक्त ज्ञान—
ईश्वरी राज या रामराज या भू तल पर स्वर्गिक विधान!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 138)

उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियाँ इनकी कविताओं में न्यूनाधिक मात्रा में पहले भी विद्यमान थीं। किन्तु अब सामान्य से अधिक ईश्वरोन्मुखता इस दौर की कविताओं की विशिष्टता है। पर द्वंद्व यह है कि वह सब कुछ नियति पर डाल कर भी संतुष्ट नहीं हो पाता। अपने परिवेश के दु:ख-दर्द अथवा अमानवीयता उसे अब भी बेचैन बनाते हैं। वह अपनी कविता में उसे उजागर किए बिना नहीं रहता—

एक बहुत गंदी बस्ती है मेरे घर के पास;
नर का नहीं, मुझे होता है उसमें नरकाभास!
अकर्मण्य कवि-हृदय व्यक्ति में, होता है यह सोच
बस्ती में रहने वालों का भाग्य बड़ा ही पोच!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 149)

कवि अपने देश-काल की दारुण दशा से न केवल परिचित है, वरन् क्लेश पाता हुआ इस समस्या के मूल स्रोत-पूँजीवादी व्यवस्था पर भी व्यंग्य करता है :

दासदासियाँ हैं जिसकी जितनी, उतना बड़ा विजेता;
जो जितना दे त्रास, बड़ा था उतना ही वह नेता!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 151)

विडंबना यह कि अब कवि में इन विपरीत स्थितियों से जूझने की शक्ति नहीं रह गई है। संभवतः वह इसीलिए बारम्बार ईश्वर को याद करता है। अपने अंतिम काव्यसंग्रह *मुट्ठी बंद रहस्य* (1979 ई.) में कवि की अध्यात्मोन्मुखता जगह-जगह अभिव्यक्त होती है। अब कवि एक दार्शनिक व्याख्याता अथवा अध्यात्म द्रष्टा अधिक प्रतीत होता है। कह सकते हैं कि नरेन्द्र जी की इस दौर की कविता का यही केन्द्रीय अनुभव है :

मुट्ठी बाँधे आते हैं सब, जाते हाथ पसार!
नई नहीं यह बात, नया है अनुभव आविष्कार!

(*मुट्ठी बंद रहस्य*, पृष्ठ 23)

कवि प्रश्न करता है कि आख़िर मुट्ठी में बंद क्या है? जिसके बिना सब कुछ असार लगता है? कवि की मान्यता है कि वह उसका अदृष्ट भाग्य ही है जो उसे सच्चिदानंद परमात्मा की कृपा से प्राप्त हुआ है-कवि मानने लगता है कि जीवन में इधर-उधर भटकने से कोई लाभ नहीं। परमात्मा से आँखें चुराकर, आत्मा से निर्वासित होकर कुछ लाभ नहीं मिलने वाला है :

पंछी, तेरा कहाँ बसेरा?
पर्वत-पर्वत उड़ता फिरता, मोह-खोह में डाले डेरा!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 12)

जीवन के इस उत्तरकालीन दौर में आकर कवि अनुभव करता है कि उसने जीवन को व्यर्थ ही गँवा दिया। दरअसल, उसे जीवन जीना आया ही नहीं। ग़ज़ल की शैली अपनाकर तत्वचर्चा करते हुए 'क्या कहूँ' कविता में कवि कहता है :

जी लिया, पर यों जिया-जीना न जाना, क्या कहूँ?
यों जिया ज्यों किया जीने का बहाना, क्या कहूँ?
× × ×
हो न पाया नित्य से नित लौ लगाना, क्या कहूँ?

(उपर्युक्त, पृष्ठ 14)

अपने निरंतर मूल्यहीन, विघटित होते समय से क्षुब्ध, निराश कवि अपने पूर्व के कामों को निरर्थक मानता हुआ निरंतर सोचता है और कहता है कि ऐसे

स्वार्थी-व्यक्तिवादी संसार की कल्पना तो उसने नहीं की थी। पर वह उसी में रहने के लिए अभिशप्त है :

भीतर-भीतर दम घुटता है, दहता है तन गीला ईंधन!
योगाग्नि बनो या धर्म मेघ, हे अंतर्यामी करुणाकर!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 16)

कवि के चारों ओर ऐसा वातावरण क्योंकर बन रहा है? परंपराएँ ध्वस्त क्यों हो रही हैं? जीवन-रस क्यों सूख रहा है? –इनके सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक निहितार्थों की ओर वह नहीं जाता। अब तो उसे महाकाल की आहट ही अधिक सुनाई देती है। उसकी सारी बुद्धि-चेतना इसी ओर केन्द्रित है :

प्राण! अब ढलता है दिनमान!
गुंजित दिशावंशकुंजों में कालहंस का गान!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 19)

इस दौर में कवि की कल्पना लोकोत्तर की उड़ान पर है। वह वहीं के सपने देखता है। सपनों में न जाने कितने शव पड़े हुए दिखाई देते हैं। पूर्वजन्म विश्वासी कवि मानता है कि '*वह मेरे ही शव पड़े हुए मेरे असंख्य देहांतर*' (पृष्ठ 20) हैं जो अपने-अपने समय में भोगों को भोगकर वहाँ पहुँचे हैं। फिर वार्धक्य भी है। पुराना सपना, पुराना संसार, पुराने मित्र, संगी-साथी छूट रहे हैं - '*सब एक-एक कर दीप बुझे।*' (पृष्ठ 20) पुरानी निष्ठा उसे अब काम नहीं दे रही। गाँधी जैसे निष्ठावान महात्मा की हत्या उसे विचलित करती हुई पूछती है - 'होनी थी या अनहोनी'। कवि का अब यह मानना है कि संभवत: '*वह वज्रलेख विधि की रचना?*' (पृष्ठ 26) ही रही होगी जो ऐसा घटित हुआ और हो रहा है। ऐसे समय में कोई कवि सुकुमार कैसे बना रह सकता है? वह चिन्तनशील बन जाता है। कारण, जीवन को '*ज्ञानी ने जाना, अज्ञानी-कवि केवल हुआ मुदित*' (पृष्ठ 25) विडंबना यह है कि अब वह मुदित नहीं रह पा रहा और न जीवन की विडंबनाओं को उद्घाटित करने वाले कवि की भूमिका ही ठीक ढंग से निबाह पा रहा है। कवि को ऐसा लगता है कि जो कविता उसने अभी तक गाई है, वह भी व्यर्थ गई। न ज्ञानी ही बन सका और न कवि ही। वह 'अपनी जगह' न बना सका :

मैं उन दोनों के बीच खड़ा, / कुछ भी न कर सका हूँ !
है ख़ाली अपनी जगह, जिसे/ अब तक न भर सका हूँ !
पूरा कर अपना काम, उधर/ दोनों कब के घर गए;
मैं पूर्णकाम आश्वस्त मुक्त/ होकर न मर सका हूँ!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 25)

इस अंतिम काव्यसंग्रह में कुछ कविताएँ देशप्रेम से संबंधित हैं। 'वीर', 'भावकुसुम', 'स्वतंत्रतादेवी', 'स्वागत गीत' आदि कविताएँ सन् 1972–73 ई. में स्वाधीनता की रजत जयंती के अवसर पर रची गई थीं। कवि ने मातृभूमि को 'देवि! आद्याशक्ति' के रूप में रखकर उसका आह्वान किया है तथा अपनी भावांजलि प्रदान की है। 'स्वागत गीत' कविता में कवि ने लिखा है :

शक्तिपात करो, देवि,/ देश - भक्ति में !
जागे दायित्व-बोध / व्यक्ति - व्यक्ति में !
करो शुभालोक, लोक -/ शक्ति उन्नते।

(उपर्युक्त, पृष्ठ 34)

प्रकृति-संबंधी कविताओं में भी अब जीवन का सारतत्व महत्त्वपूर्ण हो गया है। मुक्त प्रकृति-सौन्दर्य अब कवि का इष्ट नहीं। 'दिगंबर', 'पर्जन्यनृत्य' जैसी कविताओं में पंत जी की 'परिवर्तन' कविता की अनुगूँज सुनी जा सकती है। आग के तीन रूप–मरघट, घर और यज्ञ कुंड में कवि के चिन्तन की झलक देखी जा सकती है। 'न्यायदृष्टि' कविता में वह कहता है :

हैं कर्म-ज्वाल के तीन रूप,
वह यज्ञकुंड, घर, मरघट में !
हैं तीन और तैंतीस देव–
हर लपट, लपट की करवट में !

(उपर्युक्त, पृष्ठ 55)

इस प्रकार नरेन्द्र शर्मा की उत्तरकालीन रचनाओं में पंत जी की तरह अध्यात्म लोक प्रमुख बनता जाता है। *अग्निशस्य* काव्यसंग्रह के बाद कवि की यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। परमतत्व की खोज अथवा मानव की आंतरिक क्रांति से संबंधित कविताएँ अधिकाधिक स्थान पाती चली जाती हैं। नरेन्द्र जी की ये कविताएँ अद्वैतदर्शन एवं भक्तिमार्ग से अधिक प्रभावित हैं। दरअसल, बाह्य जीवन, सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों की विकृति तथा मनुष्य की चेतना में बिखराव होने के कारण उनकी बेचैनी अधिक बढ़ी है। किन्तु सुखद यह है कि उनका कविता से अथवा जीवन से संपर्क कभी नहीं टूटा। वे निरंतर सृजनशील बने रहे। यही उनकी उपलब्धि है। □

4

प्रबंध काव्य

नरेन्द्र शर्मा ने गीतों और काव्य रचनाओं के साथ-साथ *कामिनी* (1943), *द्रौपदी* (1960), *उत्तरजय* (1965), *सुवर्णा* (1970) और *सुवीरा* (1972) नामक प्रबंध काव्यों की रचना भी की है। प्रेमकथा काव्य *कामिनी* को छोड़कर शेष सभी रचनाओं का आधार महाभारत की कथा है। कवि नरेन्द्र शर्मा इस प्रकार के कथा काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त क्यों हुए, इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं : "मेरा मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर खिंचा जा रहा था। नारी हृदय के मनोज्ञ दर्शन से मेरा मन भरा हुआ था। वह संसार की धात्री है। इस कल्पना को साकार करने के लिए विराट फलक की आवश्यकता थी, जो मुझे सिर्फ़ कथाकाव्य ही दे सकते थे।" कहना न होगा कि इन सभी कथाकाव्यों के केन्द्र में नारी की तेजस्वी मूर्ति है जो सहज ही पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

प्रथम प्रबंधकाव्य *कामिनी*–जिसे परवर्ती संस्करणों में *मनोकामिनी* के नाम से जाना गया, इसमें कवि प्रेमानुरक्त और कल्पनाजीवी अधिक दिखाई देता है। इसमें निसर्ग कन्या कामिनी और अतिथि पुरुष की प्रेम कहानी कही गई है। यह कामिनी और अतिथि के संयोग-वियोग का ही नहीं शिशु के जन्म के रूप में नर-नारी की परिपूर्णता का भी काव्य कहा जा सकता है।

मनोकामिनी काव्य के प्रारंभिक भाग में कामिनी और अतिथि के मिलन के सुखद क्षणों का विवरण है। अतिथि और कामिनी प्रणय की वेला में एकाकार हो जाते हैं। किन्तु रात्रि के बाद प्रात:काल की वेला में कामिनी पाती है कि उसकी संयोग की रात वियोग में बदल गई है क्योंकि व्रजनशील अतिथि यायावरी के अभिशाप के कारण भटकने के लिए निकल गया है। इसका अंत तभी होता है जब अतिथि और कामिनी के मिलन का सुफल संतान के रूप में प्राप्त होता है। कामिनी के मध्य भाग की कथा विरह का दु:ख भोगने वाली प्रेमिका और उत्कंठिता भावी माता की संवेदना से अनुप्राणित है। इन दोनों रूपों में ही कामिनी का स्वरूप मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। भारतीय नर-नारी के प्रेम का साफल्य गृहस्थ

जीवन तथा वात्सल्य में निहित दिखाया गया है। इस काव्य में कवि का प्रकृति सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और मुग्धभाव सहज ही देखा जा सकता है। यही, नरेन्द्र के इस कथा काव्य में बारहमासा-वर्णन भी विशेष उल्लेखनीय है। इसे शमशेरबहादुर सिंह ने खड़ी बोली का श्रेष्ठ और एकमात्र बारहमासा बताया है जो साहित्यिक सौष्ठव से भरपूर है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है : "*कामिनी* की कथा का वातावरण विश्वयुद्ध के प्रकोप से थर-थर काँपती हुई दुनिया से बहुत भिन्न है।" निश्चय ही इस काव्य में नारी की मधुमय सुवास है, उसका सुशोभनश्रृंगार है, मातृत्व का समादर है, जीवन का उन्मत्त प्रभंजन नहीं। यही कारण है कि पुत्र की प्रीति पिता को अपने पास खींच ले आती है और इस प्रकार कामिनी की कहानी त्रासदी न बनकर सुखद और सुष्ठु बन जाती है।

सन् 1960 ई. में प्रकाशित *द्रौपदी* उनका प्रसिद्ध लघुकथा काव्य है। इसमें महाभारत की कथा के अंशों को कवि ने अपनी दृष्टि और योजना के अनुसार एक प्रतीक काव्य के रूप में अंकित किया है। इस काव्य के केन्द्र में है : द्रौपदी। कवि का कथन है : मैंने द्रौपदी को पाँच महातत्त्वों (युधिष्ठिर–आकाश तत्त्व, भीम–प्राण तत्त्व, अर्जुन–अग्नि तत्त्व, नकुल–जल तत्त्व और सहदेव–भूमि तत्त्व) को संश्लिष्ट और तेजोमय कर देने वाली जीवनी शक्ति के रूप में देखा है। इस प्रकार वह पाँच पांडवों को जोड़ती है। कथा वही चिर परिचित है। धृतराष्ट्र की शत-शत अंध इच्छाएँ उनके सौ पुत्रों के रूप में फूलती-फलती और दुर्योधन के माध्यम से कौरवों को पराभव और विनाश की ओर ले जाती है। ये ही दुर्योधन में सत्ता का लालच पैदा करती हैं, उसे अहंकारी बनाती हैं तथा द्रौपदी का अपमान कराती हैं। पांडवों द्वारा राज्य में अपना हिस्सा माँगने पर धृतराष्ट्र की असमर्थता तथा इसके स्थान पर खांडव वन की बंजरभूमि देना, पांडवों का उसे अपने उद्योग से स्वर्ग के समान बना लेना, तपस्या और साधना से दिव्य शस्त्रास्त्र प्राप्त करना आदि पांडवों को शक्ति-संपन्न बनाते हैं। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर अपना सर्वस्व हार जाते हैं। द्रौपदी को भी एक उपकरण समझ उसे भी दाँव पर लगा देते हैं। यहीं भरी राजसभा में दुःशासन द्वारा द्रौपदी का अपमान होता है तथा पांडवों को बनवास मिलता है। बनवास के दौरान पांडव अनेक सुख-दुःख झेलते हुए सामान्य जनता से साक्षात्कार करते हैं। उनका विश्वास जीतते हैं और आत्मविश्वास संपन्न होते हैं। कुचक्री दुर्योधन क्रमशः अधोगति को प्राप्त होता है, युधिष्ठिर आदि पांडव ऊर्ध्वगति को। अहंकारी, दुर्योधन के प्रयासों से प्रतिशोध की भूमिका बनती है। कुरुक्षेत्र में कौरव-पांडवों का विनाशकारी युद्ध होता है। युद्ध में महाभारत की नारियों को अपने पुत्रों का बलिदान देना पड़ता है। चाहे गांधारी हों या कुन्ती, द्रौपदी हों या सुभद्रा। परंतु इन सबमें विशिष्ट है : द्रौपदी। कारण, वही पाँच पांडवों रूपी पंच महातत्त्वों को संश्लिष्ट कर उन्हें उद्योगशील बनाती है तथा उन्हें

लक्ष्य-प्राप्ति की ओर उन्मुख करती है। कवि के शब्दों में कहें : "द्रौपदी स्वयंवर के फलस्वरूप, जीवनीशक्ति द्रौपदी की प्राप्ति से पाँच पांडवों के रूप में पाँच महातत्त्व संश्लिष्ट रूप प्राप्त करते हैं और प्राप्त करते हैं अपने लुप्त स्वत्वों को।" (*द्रौपदी* : नवीन संस्करण की भूमिका, पृष्ठ 9)

कथनीय है कि द्रौपदी के माध्यम से कवि का उद्देश्य महाभारत की कथा कहना नहीं है। वह जानता है कि भारतीय पाठक महाभारत की कथा से भलीभाँति परिचित है। इसलिए कुछ 'संकेतों' और 'संस्पर्शों' के माध्यम से द्रौपदी के गौरवशाली चरित्र को उभारा गया है। उसके माध्यम से रचनाकार भारतीय नारी के तेजबल का गुणगान करने का प्रयास किया है। कवि दृष्टि में द्रौपदी जितनी प्राचीना है, उतनी ही नवीना भी। कहा जा सकता है कि द्रौपदी नारी शक्ति का एक शाश्वत नित्य नवीन निरंतर प्रतीक है। इसे उद्घाटित करने में नरेन्द्र शर्मा को महती सफलता मिली है।

महादेवी वर्मा को समर्पित *उत्तरजय* नामक गाथाकाव्य अथवा कथाकाव्य महाभारत के उत्तरार्द्ध की कथा से संबंधित है। दुर्योधन के स्वर्ग जाने तथा आवेश में आकर क्षुब्ध अश्वत्थामा द्वारा युद्ध की अंतिम रात द्रौपदी के पाँचों पुत्रों और उसके भाई *धृष्टद्युम्न* का वध कर देना तथा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर उत्तरा के गर्भ के विनाश की विभीषिका–इस काव्य की मुख्य घटनाएँ हैं। इस प्रकार उक्त लघुकाव्य का केन्द्रीय चरित्र अश्वत्थामा है। इसका संकेत कवि ने उक्त काव्य की 'भूमिका' में इस प्रकार किया है : "दुर्योधन के आहत-हत होते ही यों तो महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाता है किन्तु महारथी अश्वत्थामा के युद्धजनित महारोष और दोषजनित पराक्रम के कारण युद्ध की अंतिम रात्रि, पांचाल शिविर के लिए संहार की कालरात्रि ही बन जाती है।" (*उत्तरजय*, पृष्ठ 3)

पांडव कुल के इस विनाश से युधिष्ठिर का मन बहुत दुःखी होता है। वे गुरु द्रोण की मृत्यु का कारण स्वयं को मानते हुए गुरुपुत्र अश्वत्थामा को वहाँ से भागने से रोक लेते हैं। पश्चात्ताप के क्षण में अश्वत्थामा को ग्लानि होती है कि उन्होंने चिरंजीव और अवध्य होते हुए भी सौम्यजाति भ्रूणों की हत्या की। इस ताप से तप्त होते हुए वे तिमिरनगरी से दूर चले जाते हैं। अश्वत्थामा के जाने के बाद द्रौपदी विलाप करती है और युधिष्ठिर से राजधर्म पालन करते हुए अश्वत्थामा के माथे की मणि छीन लेने को कहती है। युधिष्ठिर गुरुपुत्र से प्रतिशोध लेना उचित नहीं समझते। कृष्ण अश्वत्थामा को पीड़ा का महत्त्व समझाते हुए अपने ब्रह्मास्त्र की ज्वाला समेट लेने तथा उनसे मणि प्रदान करने के लिए कहते हैं।

कथनीय है कि कवि नरेन्द्र पीड़ा को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। इसलिए उन्होंने अश्वत्थामा के व्यक्तित्व को यह नया आयाम दिया है। उन्होंने प्रतीकात्मक पात्र द्वारा पीड़ा के संदर्भ में भले-बुरे का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

किया है। उन्होंने लिखा है : "पीड़ा प्राणी की गरीयसी शिक्षिका है। तो क्या अश्वत्थामा पीड़ा से बच-बचकर चलने के कारण ही अंतत: परपीड़क बने और फिर प्रतिक्रियावश अति पीड़ा के चक्र में फँसे? क्या पीड़ा ही अंतत: उनके लिए पाप-ताप और शाप बन गई?" (वही, पृष्ठ 3) गांधारी का कृष्ण को शाप, युधिष्ठिर की भीष्म से राजधर्म की दीक्षा, कृष्ण के निधन की संक्षिप्त कथा का वर्णन इस काव्य में किया गया है। इससे युधिष्ठिर का मन विरक्ति से भर जाता है और वे अपना राजपाट परीक्षित को सौंपकर हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। अंतिम अध्याय में सूचना दी जाती है कि अचानक एक तीर धरती की ओर आता दिखाई देता है जो कलियुग के रूप में अवतरित राजा दुर्योधन हैं। वह स्वर्गोपभोग कर धरती पर लौट रहे हैं। यही शाश्वत क्रम है :

कलियुग बन उतरेंगे भू पर,
स्वर्ग भोगकर, नृप दुर्योधन!
कालचक्र गतिशील निरंतर,
क्रमश: आरोहण-अवरोहण!

(उपर्युक्त, पृष्ठ 55)

नरेन्द्र शर्मा का चौथा प्रबंधकाव्य *सुवर्णा* (1970 ई.) कर्ण और सुवर्णा की कहानी से संबद्ध है। *रश्मिरथी* के रूप में कर्ण की कथा कहने वाले अपने समकालीन कवि 'दिनकर' को यह रचना सस्नेह समर्पित की गई है। हालाँकि कर्ण और सुवर्णा की यह कथा लोकगाथा से प्रेरित है। अधिकांश में यह कवि-कल्पना है। यहाँ भी कवि ने महाभारत की स्थितियों के बीच कर्ण की कथा कहते हुए राजकुमारी सुवर्णा की कहानी को विस्तृत फलक प्रदान किया है। *सुवर्णा* काव्य के 'निवेदन' में कवि कहते हैं : "द्रौपदी में महाभारत के युद्ध की पूर्वपीठिका प्रस्तुत की गई थी *उत्तरजय* में युद्धोत्तर स्थिति और परिस्थिति को प्रस्तुत किया गया है।" इस काव्य की विशेषता यह है कि इन्होंने कर्ण-सुवर्णा की इस कहानी में कर्ण के दिव्य व्यक्तित्व, पौरुष या उनकी दानवीरता से आगे बढ़कर उनके मानवरूप, उनके हृदय पक्ष पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। अहं की धधकती ज्वाला, प्रतिष्ठा और सम्मान की भूख और वासना की तेज़ लहरें कर्ण के व्यक्तित्व में उभरती दिखाई गई हैं। स्वर्णदुर्ग के महाराजा की अप्रतिम सुंदरी और वीर पुत्री सुवर्णा कर्ण की बंदिनी बनती है किन्तु सूतपुत्र समझने के कारण वह कर्ण के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाती। इधर महाभारत के युद्ध में अधिरथी कहलाने के कारण कर्ण अपमानित महसूस करता है तथा भीष्म के पतन तक स्वयं को उससे अलग रखता है। किन्तु भीष्म के शरशय्या शयित होने पर स्वयं को रोक नहीं पाता। पितामह के चरणों में सिर नवाता है और उनसे आत्मज्ञान भी प्राप्त करता है। भीष्म उसे समझाते हैं कि महाभारत के युद्ध के मूल में है : अहं

का बीज। वह स्वयं के अंदर छिपे अहंकार का भी साक्षात्कार करता है तथा सच्चे अर्थों में निष्काम बनकर अपने शिविर में लौटता है। वह अपनी दुर्बलताओं के लिए सुवर्णा से दुःख प्रकट करते हुए उसे मुक्त कर देता है। सुवर्णा कर्ण के प्रति आकर्षित होते हुए भी स्वतंत्र भटकने के लिए निकल पड़ती है तथा युद्धभूमि की विभीषिका देखकर बेसुध हो जाती है। वह एक ब्राह्मण के घर आश्रय लेती है तथा ब्राह्मण कन्याओं के साथ घायल सैनिकों की सेवा करती है। भीष्म की वंदना करते हुए युगधर्म की भी शिक्षा लेती है। वे उसे कृष्ण के पास भेजते हैं। अंत में महर्षि व्यास की कृपा से कृष्ण को अपने पिता के रूप में प्राप्त करती है।

जैसा कि कहा गया इस काव्य में कर्ण का मनुष्य रूप प्रमुखता से उभारा गया है। इसीलिए वह सुवर्णा के प्रति आसक्त होते हुए भी उसे अपनी वासना की विवश दासी न बनाकर एक प्रणयी के रूप में उससे प्रेम की याचना करता है। कवि मानता है कि प्रेम सहज रूप में ही पाया जा सकता है। सामाजिक मर्यादाओं के कारण वह कर्ण को चाहते हुए भी प्रेम नहीं कर पाती। किन्तु मृत्यु के बाद यह जानने पर कि वह कुंतीपुत्र था तो वह कर्ण के साथ सती होने के लिए तैयार हो जाती है। तब कृष्ण उसे बचाते हैं और उसे आशीर्वाद देते हैं :

शुद्धोदन होगा कर्ण, सुवर्णा माया कालांतर में,
होंगे भावी अमिताभ बने जो वासुदेव द्वापर में।

स्पष्ट है कि *सुवर्णा* प्रबंध काव्य की नायिका स्वर्ण दुर्ग के अभिजात, वीर और धीरोदात्त विधुर वृद्ध राजा की एकमात्र लाडली बेटी थी। हमारी मनीषा भी ऐसे ही आदर्श की पुत्री है। सुवर्णा के पिता दुर्योधन के सेनानायक कर्ण द्वारा विजित और हत हुए। यही हाल हमारी मनीषा के जन्मदाता और पालक-पोषक आदर्श का हुआ। सुवर्णा सैनिकवेश में बंदी बना ली गई। स्वतंत्र होने के बाद के भारत में हमारी प्रतिबद्ध मनीषा की भी बहुत कुछ ऐसी ही हालत है। (निवेदन) संभवत: इस काव्य में कवि आधुनिक युग की द्विधाग्रस्त मनीषा को दर्शाना चाहता था। पर वह उसकी क्षीण रेखा ही उभार पाया है। उसे प्रबंध काव्य की संरचना में पिरो नहीं पाया। न ही सुवर्णा के माध्यम से नारी-पुरुष के शाश्वत संबंधों को युगीन संदर्भों में मानवीय धरातल पर प्रस्तुत कर पाया है।

कामायनी के रूपक से प्रभावित होते हुए भी कवि युगीन संदर्भों को कथा में उतना नहीं पिरो पाया है जितना महाभारत की कथा को। हालाँकि उसने कर्ण की मानव सुलभ दुर्बलता, उसके अहं की व्याख्या, नारी व्यक्तित्व की जटिलता आदि आयामों का काव्यात्मक विवेचन अवश्य किया है।

नरेन्द्र शर्मा का अंतिम प्रबंध काव्य *सुवीरा* (1972 ई.) भी *महाभारत* से संबद्ध है। श्रीकृष्ण के कौरव-पांडवों के बीच संधि-प्रयास विफल हो जाने पर माता कुंती ने अपने पुत्र के प्रति संदेश के रूप में यह उपाख्यान श्रीकृष्ण को

सुनाया तथा युधिष्ठिर से यह कहलाया कि वे अपने नाम को चरितार्थ करते हुए युद्ध में स्थिर रहें। कवि नरेन्द्र शर्मा का यह मंतव्य उचित ही प्रतीत होता है कि कुंती माता को सौवीर राष्ट्र की विदुला माता के उपाख्यान से अवश्य बल प्राप्त हुआ होगा "क्योंकि दोनों राजमाताएँ लगभग एक जैसी ही स्थिति में थीं। दोनों विधवा थीं और दोनों अपने-अपने पुत्र को समर्थ रूप में देखना चाहती थीं। दोनों की दृष्टि अधिकार और कर्तव्य के प्रति सजग थी। दोनों अपने-अपने प्राण प्यारे पुत्र को यशस्वी और कीर्त्तिवंत रूप में देखना चाहती थी। उन्हें मोह से विवेक और प्रेय से श्रेय अधिक प्रिय था। दोनों माताएँ क्षत्राणी थीं।" (*सुवीरा*, भूमिका, पृष्ठ 5)

कथनीय है कि सौवीर राष्ट्र की राजधानी *सुवीरा* के नाम से रचा गया यह प्रबंध काव्य मातृशक्ति की महिमा को दर्शाने वाला काव्य है। कवि ने इस काव्यग्रंथ की भूमिका में कथा का उल्लेख करते हुए कहा है : "वीर माता विदुला सौवीर देश की राजमाता थी। विधवा राजमाता ने अपने इकलौते पुत्र राजकुमार संजय और सौवीर प्रजा का लालन-पालन भली-भाँति किया। संजय बड़ा हुआ और राजगद्दी पर बैठा। वह विद्वान और वीर था। वह प्रजावत्सल और मातृभक्त था। उसकी कुल परंपरा महान थी। वह युद्धों में विजयी हुआ। किन्तु एक बार युद्धस्थल से भाग खड़ा होने के अतिरिक्त, उसे कोई उपाय नहीं सूझा। जान है तो जहान है, शायद उसने इस तरह अपना मन समझा लिया। लेकिन वीरमाता विदुला के लिए पुत्र का युद्ध से भाग आना असह्य हो गया। माता ने पुत्र के आत्मसम्मान, विवेक और कर्तव्य बोध को जगाया। संजय युद्ध में गया और विजयी हुआ। संक्षेप में यही वह पुरातन वीरगाथा है, जिसे महाभारतांतर्गत विदुला आख्यान कहा जाता है।" (वही, पृष्ठ 5-6)

स्पष्ट है कि विदुला आख्यान पर आधारित इस लघु प्रबंध काव्य में नौ अध्यायों के बीच बाँटकर कथा कही गई है। कवि ने स्वयं माना है कि इस काव्य में कथानक, चरित्र चित्रण आदि पर अधिक ध्यान केंद्रित नहीं किया गया है। इसकी अपेक्षा परिवेश, परिस्थिति और मन की स्थितियों को अधिक महत्त्व दिया गया है। इस क्रम में चरित्र कवि के ध्यान से सर्वत्र ओझल हो गया है ऐसा प्रतीत नहीं होता। नारी शक्ति अथवा माता की महिमा का पूरा निदर्शन उक्त काव्य में उपलब्ध होता है। अत: ऐसे में यह कहा जा सकता है कि '*सुवीरा* देशकाल के अंतर्गत और देशकालोत्तर आयामों में तथा स्तरों पर सक्रिय मातृशक्ति की गाथा है जो आज भी उतनी ही समीचीन है जितनी कि वह किसी प्राचीन देशकाल में रही होगी।' यह भी कह सकते हैं कि अपनी माता को स्मरण करने के बहाने इस काव्य की रचना हुई होगी। उन्हें पुस्तक के समर्पण से ऐसा ही प्रतीत होता है।

युगधर्म की दृष्टि से किसी विशेष समस्या से यह काव्य प्रेरित नहीं होता। मर्मस्पर्शी काव्याभिव्यक्ति बीच-बीच में अवश्य दृष्टिगत होती है।

कह सकते हैं कि अपने सभी प्रबंध काव्यों में महाभारत के अंशों की कहानी को पद्यबद्ध लिखना कवि का उद्देश्य नहीं रहा है। बल्कि आज के संदर्भों में प्रेम, रूप-सौन्दर्य, नारी शक्ति का ऊर्जस्वित स्वरूप उपस्थित करना—उनके अभीष्ट रहे हैं। इन प्रबंध काव्यों में आए सभी भाव गहरे मानवीय सरोकारों के सूचक हैं। इन्हें कवि ने इन प्रबंध काव्यों में उभार कर सामने ला दिया है। इन्हें पढ़कर यह नहीं कहा जा सकता है कि समकालीन समस्याओं से आँखें मूँद कर कवि नरेन्द्र शर्मा ने अध्यात्म चिन्तन या शाश्वत सत्य की साधना मात्र की है। बल्कि जो अनुभव से पाया है उसे भावप्रवण ढंग से इन काव्यों में उँड़ेल दिया गया है। इससे कविता में एक ओर मानव सुलभ गुण पुष्ट हुए हैं तो वहीं उदात्त मूल्यों की सृष्टि भी हुई है। ❑

5

कहानी और जीवनी

1943 ई. में *कड़वी-मीठी बातें* नाम से नरेन्द्र शर्मा का एकमात्र कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ था। इसके बाद न तो इनकी और कहानियाँ पढ़ने को मिलीं और न ही कोई दूसरा कहानी-संग्रह प्रकाश में आया। 20 साल बाद *ज्वाला-परचूनी* नाम से 1963 ई. में *कड़वी-मीठी बातें* का पुनः प्रकाशन हुआ। इसके वक्तव्य में कहानीकार ने लिखा : "प्रस्तुत कहानी-संग्रह 'ज्वाला-परचूनी' कहानी के नाम पर उसी नाम से प्रकाशित हो रहा है। इसमें 12 कहानियाँ संगृहीत हैं जो 1943 में *कड़वी-मीठी-बातें* नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई थीं। ... अतिशयोक्ति न होगी यदि यह कहा जाए कि आज के अधिकतर पाठक तो मुझे कहानीकार के रूप में जानते ही नहीं। उनके लिए प्रस्तुत कहानी-संग्रह नया ही होगा।" आज यह कहानी-संग्रह भी लगभग अनुपलब्ध है। इसके कारण कवि नरेन्द्र शर्मा का कहानीकार रूप अलक्षित होता चला जा रहा है।

नरेन्द्र शर्मा हिन्दी साहित्य में कहानीकार की अपेक्षा कवि-गीतकार के रूप में अधिक ख्यात रहे हैं। वैसे भी कहानी लिखना इन्होंने बहुत अरसे पहले छोड़ दिया था। कविता-लेखन ही इनका मुख्य धर्म रहा है। इसलिए कहानियों में इनके कवि-रूप का प्रभाव मिलता है। ऐसे में यदि इनकी कहानियों का मूल स्वर भावुकता को मान लिया जाय तो अस्वाभाविक न होगा। कहानी-लेखन की दृष्टि से देखें तो जिस समय नरेन्द्र जी कहानियाँ लिख रहे थे, जैनेन्द्र-अज्ञेय ने भी लगभग उसी समय कहानी-लेखन का प्रारंभ किया। इन लोगों ने घटनापरकता की अपेक्षा व्यक्तिमन को केन्द्र बनाकर कहानी-लेखन का प्रयास किया था।

अपने कहानी-लेखन के समय का उल्लेख करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने अपने कहानी-संग्रह की भूमिका में लिखा है : "इन्हें मैंने सन् 1933 और सन् 1942 के बीच समय-समय पर लिखा था।" इन्होंने आगे यह भी बताया कि रचनाकाल की दृष्टि से सर्वप्रथम कहानी 'टेक्स्ट बुक' है जो इलाहाबाद के साप्ताहिक *भारत* में प्रकाशित हुई थी। 'ज्वाला-परचूनी' और 'पिछवाड़ा' कहानियाँ भगवतीचरण

वर्मा द्वारा संपादित साप्ताहिक *विचार* में सन् 1940 ई. में प्रकाशित हुई थीं। ये तीनों कहानियाँ कठोर जीवन-संघर्ष को द्योतित करने वाली तथा हमारे रूढ़िग्रस्त, विषमता से भरे विचित्र समाज की दशा को दर्शाने वाली कहानियाँ हैं। चाहे अपने बेटे को 'टेक्स्टबुक' उपलब्ध न करा सकने वाली विधवा ब्राह्मणी-सुखिया हो या अपने भाग्य का मारा, मनहूस कहलाने वाला परचूनिया 'ज्वाला'; जिसकी मनहूसियत के क़िस्से गाँव-जवार में फैला दिए गए हैं। यहाँ तक कि उसे जीता-जागता भूत ही बना दिया जाता है। उसमें मनुष्य भी बसता है—यह मार्मिक चित्र देकर कहानीकार ने 'ज्वाला-परचूनी' को अविस्मरणीय बना दिया है। इसी प्रकार 'पिछवाड़ा' कहानी है जिसमें शरीफ़ों के पिछवाड़े बसने वाली हरिजन बस्ती की दयनीय हालत को उजागर किया गया है। जमादार वैशाखी और उसका भाई भदई इस कहानी के नायक हैं जो गंदगी और गलाजत भरी ज़िन्दगी ढोने के लिए ही बने हैं। निम्न वर्ग द्वारा इस सबसे निकलने का प्रयास समाज के अवरोधों के कारण व्यर्थ ही रह जाता है। महाजनों की बस्ती की चौकीदारी करके वैशाखी को लगता है कि वह पशुतुल्य जीवन से मुक्त हो गया है। पर यह उसका भ्रम था। उस अकेले की 'मनुष्य' बनने की इच्छा समाज कभी पूरी होने नहीं देता। उसका भाई भदई ऊपर नहीं उठ पाता। 'समाज में अकेले कभी मुक्ति नहीं मिलती'—मुक्तिबोध का यह कथन यहाँ याद आता है। कथनीय है कि यह कहानी आज के दलित-विमर्श से बहुत पहले की लिखी हुई है, जिसकी चर्चा हिन्दी में नहीं हुई। कहानी के ये नायक बड़ी जातिवालों के टुकड़े खाने के लिए किस प्रकार विवश हैं; कहानीकार लिखता है : "कमाते हैं मैला-शरीफों की रोगग्रस्त गंदी अंतड़ियों से निकला हुआ, कपड़ा जो पहनते हैं—शरीफ़ों की उतरन है और रहते जहाँ हैं, वह है शरीफ़ों का पिछवाड़ा।" यह हमारे समाज का वह कुरूप चेहरा है जिसे थोड़ा-सा हिलाने-डुलाने पर हमारा समाज बवाल खड़ा कर देता है। उन्हें समाज के अन्य सदस्यों के समकक्ष लाना तो दूर, वह उन्हें पशुवत् बनाए रखना चाहता है। जयशंकर प्रसाद या अज्ञेय की तरह यहाँ भले ही यथार्थ चित्रण में भावुकता का समावेश हो किन्तु कहानीकार समाज की विषमताओं को पूरी भयावहता के साथ उभारने में पूर्णत: सफल हुआ है।

उक्त संग्रह की कुछ अन्य कहानियों में सामाजिक संघर्ष, उससे बनते-बिगड़ते मनुष्य के चित्र उतने न होकर व्यक्तिमन के अंत:संघर्ष को उभारने वाले चित्र अधिक हैं। क्षयशील सामंती समाज में चाहे ज़मींदार बाबू शारदाप्रसाद नारायण सिंह की कहानी 'दो पैसे' हो या अवध के राजाओं के रनिवास की ईरानी स्त्री के पुत्र 'शीराज़ी' का व्यक्ति-चित्र हो—दोनों कहानियों में सामाजिक घटनाओं के साथ-साथ व्यक्ति मनोविज्ञान को प्रमुखता से उभारा गया है तथा दिखाया गया है कि नैतिक-अनैतिकता के द्वंद्व में अनैतिकता मनुष्य को आख़िर तक कचोटती

रहती है। इन कहानियों में सामाजिक परिवेश आया अवश्य है; परंतु मुख्य है : उस परिवेश से प्रभावित होता व्यक्ति मन। अवध के राजा की अवैध संतान 'शीराज़ी'–जो विगड़ैल, नाकारा और शरावी हो गया था–राजासाहब से अपमानित होकर, उन्हें थप्पड़ मार वह बंबई भाग जाता है। वहाँ कुली-मज़दूर बनकर अपनी रोज़ी-रोटी कमाता है। जो शीराज़ी अपने अवैध पिता को थप्पड़ मारकर भाग जाता है, वही अपने गाँव वालों को परदेश में पाकर उनका आतिथ्य-सत्कार करता है और उनकी रक्षा के लिए अपनी जान तक कुर्वान कर देता है। इन कहानियों में मनोवैज्ञानिक चित्रण पर बल है। दरअसल जव ये कहानियाँ लिखी गईं–उस समय हिन्दी में मनोवैज्ञानिक किस्म की कहानियाँ लिखी जा रही थीं। प्रेमचंद के बाद हिन्दी कथा-संरचना में बदलाव आ रहा था। जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय बाह्य जीवन-संघर्ष की अपेक्षा अंत:संघर्ष-प्रधान कथा-रचना पर बल दे रहे थे। उसी समय कहानी लिख रहे नरेन्द्र शर्मा ने भी अंत:संघर्ष प्रधान अनेक कहानियों की रचना की। इन कहानियों का परिवेश बहुत कुछ रोमानी क़िस्म का है। सांसारिकता से दूर बनता हुआ। यहाँ युवा-जीवन की उन्मुक्तता पर बल है। पर समाज उन्मुक्तता नहीं मर्यादा-बंधन में विश्वास रखता है। इन दोनों की टकराहट से भावुक प्रेम तार-तार हो टूट जाता है। कथनीय है कि यहाँ प्रेम-प्रसंगों में उत्सर्ग की भावना को हठपूर्वक दिखाने का प्रयास नहीं किया गया है। यहाँ प्रेम और सामाजिक मर्यादा का द्वंद्व या तनाव कभी मूर्त्त तो कभी अमूर्त्त रूप में कहानियों में आता है किन्तु रोमानी जीवन-दृष्टि होने के कारण कहानी भावावेशमय अधिक बन जाती है। चाहे विवाहपूर्व प्रेम की कहानी 'सौगात' हो या 'सुंदर' कहानी हो दोनों में काल्पनिक दुनिया ही मुख्य रूप से चित्रित हुई है। विवाह पूर्व प्रेम की कहानी 'सुंदर' को लें। उक्त कहानी की अल्हड़ युवती सुंदर "गाँव और जंगल में हिरनी की तरह उछलती-फिरती थी, कुदान मारती थी, खल-खल हँसती थी।" पर प्रेम में धोखा खाने पर वह ज़मीन पर धम्म से आ गिरती है। उसका विवाह 45 साल के दुहाजू जीजा से कर दिया जाता है। उसके बाद का उसका रूप-वर्णन करते हुए कहानीकार लिखता है : अब उसका पेट मटका-सा, हाथ-पाँव सरकंडे से और मुँह बंदरिया के समान निकल आया है। संभवत: स्त्री का यही रूप समाज को उचित और प्रिय लगता है। कहानीकार इससे सहमत न होते हुए टिप्पणी करता है : "सुंदर अब साकार लक्ष्मी है या सती, सीता है या सावित्री है हम यह सब नहीं जानते । पर एक बात निश्चित है कि सुंदर अब सुंदर नहीं रही।" स्पष्ट ही यहाँ कहानीकार की रोमानी दृष्टि की प्रधानता है जो समाज के गतिचक्र से दूर अपने नायक-नायिकाओं को अक्षुण्ण देखना चाहता है। उसे जूझते नहीं दिखाना चाहता। इसीलिए उसके पात्र सांसारिकता के कठोर धरातल का स्पर्श पाकर अपने सपनों को चकनाचूर होते देखते हैं। 'सौगात' कहानी का नायक बालाराम और

जसोदा के बीच किशोरावस्था के प्रेम के सपने, उनके कौल-करार के विस्तृत वर्णन कहानी में आए हैं। बालाराम शहर जाकर अपनी जसोदा के लिए सौगात जुटाने में कठोर शारीरिक परिश्रमों को झेलता है और भावी मिलन की काल्पनिक दुनिया का निर्माण कर लेता है। सोचता है कि इतने अरसे बाद उसके मिलने पर नायिका आहिस्ते से कहेगी–"मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी। आने में इतनी देर क्यों की, निर्मोही? मैं इन चीज़ों पर थोड़े ही रीझती? मैं तो रीझी थी तुम पर ...।" कुछ समय बाद गाँव पहुँचने पर जब बालाराम वास्तविक स्थिति से साक्षात्कार करता है तो पाता है कि जसोदा का विवाह अन्यत्र हो चुका है। कहानीकार लिखता है कि तब उसका 'श्वास घुटता गया, वह पसीने से नहाने लगा और होश गुम।' यहाँ इस स्थिति से झाँकती बालाराम की त्रासदी उस मनुष्य की त्रासदी है जो अपने भोलेपन में किशोरावस्था के काल्पनिक प्रेम को अपरिवर्तनशील मान बैठता है। जबकि वास्तविकता निरंतर परिवर्तनशील है। यहाँ इस यथार्थ का सामना करने पर आघात से मूर्च्छित हो जाना–नायक के कैशोर्य को झलकाता है। इस प्रकार 'सौगात' कहानी का अंत और उससे पैदा होने वाले संदर्भ हमें नई कहानी के अनुभव-संदर्भों से जोड़ते से लगते हैं। गाँव के जीवन की सजीव झाँकी तथा वहाँ के जीवन की बोली-बानी कहानी को नया परिवेश प्रदान करती है।

यह ठीक है कि कहानीकार नरेन्द्र शर्मा का मन रोमानी दृश्यों में जितना रमा है, व्यक्तिमन के जितने गहरे मनोवैज्ञानिक दृश्यों को दे सका है, उतने व्यक्ति और समाज के द्वंद्व के चित्र उसकी कहानियों में नहीं मिलते। उक्त संकलन की कहानी 'प्रियंवदा पांडे' में, उसकी नायिका प्रियंवदा प्रेम की प्रचलित रूढ़ियों में नहीं फँसती। बल्कि वह जिसे प्रेम करती है, उसके लिए दिखावा करना भी पसंद नहीं करती। वह अपने प्रेमी की बीमारी में तन-मन-धन से उसकी सेवा करती है तथा उसके मरणोपरांत उसी की स्मृतियों को लिए जीवित रहना बेहतर समझती है। इसमें कहानीकार कल्पना में विहार करने के स्थान पर यथार्थ की भावभूमि पर कहानी को उभार अपनी प्रेम-कहानियों को मानवीय स्पर्श प्रदान करता है। चाहे 'वैराग्य का राग' कहानी हो या 'दिव्यचक्षु'–इनमें समाज के मान्य प्रेम के आदर्शों के लिए नायिका अपनी कामनाओं का बलिदान कर अंत में भले ही पछताती हो–कहानी में एक नई संरचना प्रदान करती है। कामना और सामाजिक मर्यादा के द्वंद्व में कहानीकार सामाजिक मर्यादा को कहीं भी कमतर करके आँकने का प्रयास नहीं करता। 'शिकवा-शिकायत' कहानी भी इसी प्रकार की एक प्रेमकहानी है। इसमें नायक आभ्यंतरिक प्रेम की अवधारणा से प्रेरित है तो नायिका आभ्यंतरिक के साथ प्रेम के दिखावे पर भी विश्वास करती है। वह मान करती रह जाती है। दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हुए भी अपने अहंकार के कारण साथ-साथ नहीं रह पाते, अधूरे रह जाते हैं। इस तरह ये कहानियाँ एक तरह से नई कहानी के

क्षेत्र की प्रेम कहानियों की परंपरा का पूर्वाभास देने वाली कहानियाँ भी कही जा सकती हैं। यदि नरेन्द्र शर्मा इस दिशा में आगे बढ़ते तो निस्संदेह वे एक महत्त्वपूर्ण कहानीकार के रूप में ख्यात होते।

× × ×

नरेन्द्र शर्मा ने *मोहनदास करमचंद गाँधी–एक प्रेरक जीवनी* का भी लेखन किया है। इसे प्रकाशन विभाग, भारत सरकार ने महात्मा गाँधी की जन्मशताब्दी के अवसर पर सन् 1969 ई. में प्रकाशित किया था। सामान्य जनता विशेषत: बच्चों को ध्यान में रखकर लिखी गई गाँधी जी की यह जीवनी अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। जीवनी-लेखक ने महात्मा गाँधी के प्रारंभिक जीवन–उनकी उस समय की पारिवारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों, बालक मोहनदास की चारित्रिक विशेषताओं को उनके घटना-बहुल जीवन में से निकालकर महत्त्वपूर्ण घटनाओं के आधार पर जीवनी-लेखन किया है! इससे यह जीवनी तथ्यपूर्ण और समग्र बन गई है। मार्मिक घटनाओं को चुनने के कारण बच्चों के लिए प्रेरणास्पद भी।

कथनीय है कि महात्मा गाँधी के जीवन पर देशी-विदेशी विद्वानों ने इतना लिखा है तथा उन पर इतने दस्तावेज़ और फिल्में उपलब्ध हैं–इन सबमें से अपने चरितनायक की उन घटनाओं का चयन करना तथा उनमें अनुपात और संतुलन का ध्यान रखते हुए उन्हें ऐसा रूप प्रदान करना कि उसका चरितनायक संघर्षशील जुझारू मनुष्य का रूप ग्रहण कर सके–कठिन कार्य था। इसे नरेन्द्र शर्मा ने प्रशंसनीय ढंग से पूरा किया है। इक्कीस अध्यायों में बँटी तथा लगभग 300 पृष्ठों में लिखी गई गाँधी जी की यह सचित्र जीवनी बालक मोहनदास–जिसे बचपन में मोनिया कहा जाता था, की दृढ़ता एवं सत्यनिष्ठा की परिचायक है। किशोरावस्था से ही उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनके जैसे मध्यवित्त परिवार के लिए मोहनदास को विदेश में पढ़ाई करने के लिए भेजने में आर्थिक और सामाजिक रूढ़ियों के चलते कितनी परेशानी उठानी पड़ती है–लेखक ने जीवनी में इसका मर्मस्पर्शी विवरण दिया है।

इंग्लैंड में शाकाहारी बने रहने या अपने अन्य सिद्धांतों पर डटे रहने के लिए बड़े से बड़े प्रलोभनों को छोड़ देने की घटनाओं का–यथाशक्य संक्षेप में–वर्णन लेखक ने सिलसिलेवार ढंग से किया है। उक्त पुस्तक का लगभग आधा हिस्सा 'मोनिया' से मोहनदास करमचंद गाँधी का बैरिस्टरी परीक्षा उत्तीर्ण मोहनदास करमचंद गाँधी बनने में लगा है। फिर स्वदेश वापस लौटकर उनके वकील बनने के प्रयत्न में दक्षिण अफ्रीका में अब्दुल्ला सेठ के क़ानूनी काम देखने तथा वहाँ के प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा से जूझने तथा उनके लिए संघर्ष करने की कहानी

कही गई है। जीवनी-लेखक ने बाह्य घटनाओं के माध्यम से गाँधी के उस व्यक्तित्व का निर्माण होता हुआ दिखाया है—जिसके प्रभाव से वहाँ के 'गिरमिटिया' मज़दूर अपने न्यायपूर्ण अधिकारों को लड़कर प्राप्त कर सके। एक ओर इस जीवनी में लेखक ने गाँधी के जीवन के सबल-निर्बल पक्षों को उजागर किया है तो दूसरी ओर अपने सिद्धांतों के लिए शारीरिक-मानसिक आघात झेलकर खरे सोने की तरह उभरते उन्हें दिखाया है। साथ ही, प्रवासी भारतीयों में चारित्रिक दृढ़ता तथा नैतिक बल का संचार किया है। जीवनी-लेखक ने जगह-जगह रेखांकित करते हुए इसे उनके जीवन का आधार बताया है। पैसा, पद, यश आदि कमाना गाँधी के जीवन का उद्देश्य कभी नहीं रहा। दक्षिण अफ़्रीका के हिस्से की कहानी में उनका यह जीवन पूरी तरह उभर सामने आ गया है। परिवार में 'बा', उनका जीवन-संघर्ष और अन्य कठिनाइयाँ थीं। वहाँ उनके परिवार की असुरक्षा आदि के संकेत इस जीवनी के अर्द्धांश तक आ जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि नरेन्द्र शर्मा ने अपने चरितनायक के जीवन में पूरी तरह रमकर उन्हीं घटनाओं को लिया है जो गाँधी जी के जीवन की आंतरिक विशेषताओं को उभारकर सामने लाती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि लेखक ने गाँधी के जीवन से एकाकार होकर उसे टुकड़ों-टुकड़ों में प्रस्तुत न कर उसे ऐसे धाराप्रवाह रूप में प्रस्तुत किया है कि उनके घटना-बहुल जीवन का कुछ हिस्सा छूट जाने पर भी चरितनायक के जीवन-व्यक्तित्व के सभी महत्त्वपूर्ण पक्ष उसमें गुँथ जाते हैं। साथ ही, कहीं भी ऊबड़-खाबड़पन नहीं आता। यहाँ गाँधी जी के अंतर्बाह्य जीवन से जुड़ी वे घटनाएँ रेखांकित हुई हैं जो उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता और निर्भयता को पूरी ईमानदारी से उभारती हैं।

देश लौटने की इच्छा पहले से होते हुए भी गाँधी जी दक्षिण अफ़्रीका के अपने देशवासी भाइयों को निराधार-निरवलंब छोड़कर नहीं आना चाहते थे। उन्होंने कहा—यदि एक साल के अंदर भी आपको मेरी आवश्यकता पड़ेगी तो मैं लौट आऊँगा। ऐसा एकाधिक बार हुआ भी। जब तक काले लोगों-प्रवासी भारतीयों के लिए बनाए गए काले क़ानून वापस नहीं ले लिए गए गाँधी उन्हें बीच अधर में छोड़कर नहीं आए। अपने देश की दशा अफ़्रीका से भी ख़राब थी। सन् 1915 ई. से 1948 ई. तक लगभग 32-33 साल के स्वाधीनता आंदोलन की बागडोर सँभालने वाले गाँधी जी की जीवनी को 100-125 पृष्ठों में समेटना असाधारण मेधा का काम था। नरेन्द्र शर्मा ने इस काम को बख़ूबी निभाया है। यहाँ लेखक ने अपने चरितनायक के उन्हीं गुणों को अपनी जीवनी में रखा है जो उनके व्यक्तित्व की अप्रतिम विशेषताओं को उभारते हों। उदाहरण के लिए महामना मदनमोहन मालवीय के निमंत्रण पर काशी विश्वविद्यालय के उद्घाटन कार्यक्रम में राजा-महाराजाओं की भरी सभा को संबोधित करते हुए गाँधी जी ने भारत देश

की दुर्दशा पर भाषण दिया और मणि-माणिक्य पहने बैठे राजा-महाराजाओं की असंवेदनशीलता पर उन्हें खरी-खोटी सुनाईं। यह प्रकरण गाँधी जी के खरेपन को दर्शाता है। जीवनी लेखक ने इस अध्याय का शीर्षक ही 'खरी बात और अनूठा व्यक्तित्व' रखा है। कहना होगा कि नरेन्द्र शर्मा ने स्वतंत्रता आंदोलन की उन विशिष्ट घटनाओं का चयन किया है जो विश्वप्रसिद्ध हैं एवं ऐतिहासिक तथ्य बन चुकी हैं जिनसे सत्य और अहिंसा के प्रति उनका दृढ़ विश्वास झलकता है। वे अवसरानुकूल नहीं, सत्य के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अपनी बात कहते थे। निर्भय और नि:स्वार्थ होकर अपने दीनहीन देशवासियों की सेवा करना अपना धर्म समझते थे। इसी कारण वे महात्मा कहलाए। भारत तो वैसे ही धर्मप्राण देश है। उन्होंने राम और कृष्ण की भाँति महात्मा गाँधी को किस प्रकार अवतार की श्रेणी में रख लिया–जीवनी में इसका भी उल्लेख है। जीवनी-लेखक उन्हें अवतार नहीं आरोही चेतना वाले मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करना अपना अभीष्ट समझता है। उनमें विद्रोही आत्मा निवास करती थी जो साधारण मनुष्य से भिन्न आचरण करने के लिए उन्हें विवश करती है। इसके लिए उन्हें चाहे किसी भी प्रकार की क़ीमत क्यों न चुकानी पड़ी हो। जलियाँवाला बाग़, चौराचौरी कांड, सत्याग्रह आंदोलन की समाप्ति, बारदोली, नमक सत्याग्रह आदि प्रसिद्ध घटनाओं के माध्यम से गाँधी जी की जननेता की छवि प्रस्तुत करने का प्रयास जीवनी में किया गया है। गाँधी जी की प्रेरणा किस प्रकार 'बा' को प्रभावित करती है–इसका उल्लेख अपेक्षाकृत कम होते हुए भी उसके संकेत जीवनी में जहाँ-तहाँ दिए गए हैं। उनकी नोंक-झोंक में भी कुछ सीखने को रहता है–यह दिखाया गया है। आत्मा की शुद्धि के लिए गाँधी जी ने अनेक अनशन तथा कुछ आमरण अनशन किए हैं–उस समय की बेचैनियों को जीवनी-लेखक ने उक्त ग्रंथ में साक्षात् उपस्थित कर दिया है।

चौथे दशक में राजनीति का बदलता चेहरा भी जीवनी-लेखक ने उभारा है। विशेपत: युवापीढ़ी ने शहीद भगतसिंह तथा सुभाषचंद्र बोस को अपना नेता मान विद्रोही राजनीति की ओर अपना रुख कर लिया था। इसे गाँधी जी ने हिंसक और अनैतिक मान हमेशा अस्वीकार किया। उधर अंग्रेज़ों ने अपनी कूटनीति के चलते हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष की राजनीति फैलानी प्रारंभ की। मुसलमानों को हिन्दुओं के शत्रु के रूप में खड़ा करना शुरू किया। मुस्लिमों और हरिजनों के लिए अलग चुनाव क्षेत्र आदि के विरुद्ध गाँधी का संघर्प भी यहाँ सांकेतिक रूप में दिखाया गया है। अंतत: देश का विभाजन न होने देने का प्रण, सांप्रदायिक दंगों पर निरंतर निगाह आदि सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दे इस संक्षिप्त जीवनी में आ गए हैं।

कहा जा सकता है कि क्रांतिकारी आंदोलन, चंद्रशेखर आज़ाद आदि तथा समाजवादी आंदोलन को इस जीवनी में कम स्थान दिया गया है या कांग्रेस की

अंदरूनी लड़ाई अथवा संगठनात्मक गतिविधियों का उल्लेख भर किया गया है। किन्तु जीवनी लेखक ने सरल-सरस गद्य में उन्हीं घटनाओं को केंद्र में रखकर अपने चरितनायक की कथा कही है जिनसे वे प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे अन्यथा उनके जीवन-क्रम की हलचलों को समेट पाना असंभव हो जाता।

नरेन्द्र शर्मा ने गाँधी जी की जीवनी को हिन्दी-उर्दू मिश्रित सरल भाषा में सहज संप्रेष्य बना दिया है। उनका गद्य इतना सरस तथा मुहावरेदार शैली में उपस्थित हुआ है कि पाठक उसमें अनायास पैठता चला जाता है। संभवत: कवि शमशेरबहादुर सिंह ने इसे ही उनका 'अछूता' गद्य कहा है। उनके इस गद्य की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा भी है : "शैली और शैली का तेवर इतना प्रभावकारी होता है कि लेखक का मंतव्य, भावना आदि सीधे पाठक की चेतना में सीधे उतरते जाते हैं। उनकी शैली में एक कोमलता और सरसता बराबर मिलती है।"

इस प्रकार गाँधी जी की इस जीवनी के द्वारा नरेन्द्र शर्मा ने गाँधी जी के समग्र व्यक्तित्व को पाठकों के सामने उजागर कर दिया है। विशेषता यह है कि उन्होंने कहीं भी उनकी विलक्षणताओं को नहीं उभारा बल्कि उनकी चुनौतियों तथा मानवसुलभ दुर्बलताओं से युक्त उनके व्यक्तित्व को केन्द्र में रखा है। इसमें पाठकों की रुचि निरंतर बनी रहती है। वह उनकी जीवनी को एक साथ पढ़ता चला जाता है। यही उनकी इस जीवनी को महत्त्वपूर्ण बनाता है।

× × ×

नरेन्द्र शर्मा ने समय-समय पर निबंधों की रचना की है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनके निबंध-लेख प्रकाशित होते रहे हैं। अपने जीवन-काल में उन्होंने निबंधों का संकलन तैयार भी कर लिया था किन्तु उसका प्रकाशन नहीं हो पाया। नरेन्द्र शर्मा ने विद्यार्थी जीवन से ही कहानियों के साथ-साथ निबंध लिखने प्रारंभ कर दिए थे। 1934 ई. में उन्होंने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकृति *यशोधरा* के कुछ गुण-दोषों का भी उल्लेख किया था। इससे नरेन्द्र की निडरता और गुप्त जी की उदारता का पता चलता है। अन्यथा गुप्त जी से बाद तक उनके अच्छे स्नेह-संबंध नहीं बने रहते। *हंस* में भी नरेन्द्र शर्मा का गद्य प्रकाशित होता था। मार्क्स-दर्शन में आस्था प्रकट करते हुए मार्च, 1941 ई. के *हंस* में प्रकाशित उनका निबंध 'कला-चिरजीवी' इसका उदाहरण है। अजंता की गुफाओं पर उनका एक लेख पर्याप्त चर्चित हुआ था। कवि-मित्र शमशेर ने उनके निबंधों-लेखों की चर्चा करते हुए लिखा है : "अस्तु, दूसरी चीज़ जो अभी डिस्कवर होनी है, वह है, नरेन्द्र का अछूता गद्य। प्यारा, शुद्ध, सरस गद्य, सरस और गंभीर। कहानियों के अलावा संग्रहों की भूमिकाओं और कतिपय निबंधों में भी वह देखा जा सकता है;

जैसे अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' पर लिखे गये उनके लेख में।" (*ज्योतिकलश*, पृष्ठ 22 (क))

उन्होंने अनेक स्थानों पर भाषण भी दिए हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, (आई.आई.टी.) मुंबई में साहित्य और विज्ञान के संबंधों पर दिया गया उनका भाषण पर्याप्त प्रसिद्ध हुआ था। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी ने प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की स्मृति में आयोजित 1987 की भाषणमाला के लिए नरेन्द्र शर्मा जी से अनुरोध किया। नरेन्द्र जी ने 'सांस्कृतिक संक्रांति और संभावना' विषय पर दो दिवसीय भाषणं दिया जिसे प्रकाशन विभाग, भारत सरकार ने प्रकाशित किया था। इनमें बहुत ही सहज-सरल भाषा-शैली में और अपने अनुभव की ऊष्मा से भरकर कवि नरेन्द्र शर्मा ने अपने साथ बहा ले जाने वाली शैली में कहा कि स्वाधीनता के बाद जिस जनसाधारण के उत्थान, उसके विकास और समृद्धि का सपना देखा गया था; संविधान में उसके लिए सभी प्रकार की स्वतंत्रता और अधिकारों की चर्चा की गई थी—वे सभी मध्यवर्ग और उच्च मध्य वर्ग द्वारा सत्तासीन होकर लगभग भुला दी गईं। हम जन सामान्य के प्रतिनिधि होकर इस भूमि, उसकी परंपरा और संस्कृति से जुड़ें तथा उनके कल्याण, उनकी सेवा-समृद्धि की चिन्ता करें तथा संचार-माध्यमों और दूरदर्शन—से इस चेतना को अधिकाधिक फैलाएँ—यह हमारा दायित्व है। यही सांस्कृतिक परिवर्तन या संक्रांति है जिसकी आज महती आवश्यकता है। कहना न होगा यहाँ भी इनकी जन सामान्य के लिए प्रतिबद्धता उजागर होती है। □

6

फ़िल्म-आकाशवाणी-धारावाहिक

हिन्दी फ़िल्मों से साहित्यकारों का संबंध प्रेम और घृणा का रहा है। समय-समय पर अनेक कवि-कथाकार फ़िल्मों में आए और कुछ समय बाद ही अपनी साहित्य की दुनिया में वापस चले गए। प्रसिद्ध कथाकार श्री भगवतीचरण वर्मा नरेन्द्र शर्मा को फ़िल्मों की दुनिया में लाए। हुआ यह कि 'बसंत' और 'क़िस्मत' जैसी सफल फ़िल्मों के बाद बॉम्बे टाकीज़ से इनके गीतकार प्रदीप इन्हें छोड़कर अन्यत्र चले गए। ऐसी स्थिति में वहीं काम कर रहे भगवती बाबू से एक अच्छा गीतकार तलाश करके लाने के लिए कहा गया। उनकी निगाह में तत्काल कवि सम्मेलनों में लोकप्रिय नरेन्द्र शर्मा घूम गए। वे तुरंत इलाहाबाद आए और नरेन्द्र जी को मुंबई ले गए। नरेन्द्र शर्मा तब तक न केवल अपना गीत-शिल्प विकसित कर चुके थे बल्कि उसमें सिद्धहस्त हो चुके थे। मुंबई-आगमन को स्मरण करते हुए नरेन्द्र शर्मा लिखते हैं : "बॉम्बे टाकीज़ की निदेशिका थीं उस समय की विख्यात अभिनेत्री देविका रानी। मुझे याद है कि 17 फ़रवरी (1943) के अपराह्न अर्थात् दोपहर बाद हम उनसे मिलने पहुँचे थे। भगवती बाबू साथ में थे। देविकाजी से दो घंटे चर्चा हुई। अंत में उन्होंने पूछा–आप हमारे बुलावे पर इलाहाबाद से कब रवाना हुए? मैंने उत्तर दिया "15 फ़रवरी को" इस पर उन्होंने मुझे यह कहकर आश्चर्यचकित कर दिया–"15 फ़रवरी से आपकी बॉम्बे टाकीज़ में नियुक्ति पक्की।" तीन वर्ष हम वहाँ रहे।"

'हमारी बात' नरेन्द्र शर्मा की पहली फ़िल्म थी। पूर्वाभ्यास के रूप में नरेन्द्र शर्मा ने उर्दू में एक गीत लिखा था–"*ए बादे-सबा, इठलाती न आ / मेरा गुंच ए दिल तो सूख गया*" यह सोच कर कि सिनेमा में शायद उर्दू का ही गीत चले। पर बाद में नरेन्द्र जी ने फ़िल्मी गीतों को अपने अनुसार ढाला। नरेन्द्र जी की उस समय आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही जब संगीत-निर्देशक ने उनके उस प्रारंभिक गीत को स्वीकार कर लिया। फिल्म की 'सिचुएशन' देखकर जो दूसरा गीत लिखा गया था–'*मैं उनकी बन जाऊँ रे*' बहुत लोकप्रिय हुआ। उनके

भावनायुक्त गीत–संगीत में बँधे सहज ही निकलते चले आते थे। फिर तो नरेन्द्र जी ने फ़िल्मों के दस वर्षों के दौरान बॉम्बे टॉकीज़, राजकमल, मिनर्वा, प्रभात आदि जो बड़ी और प्रसिद्ध संस्थाएँ थीं, उन सबके साथ काम किया तथा देविका रानी से लेकर बी. आर. चोपड़ा तक सभी ने इनकी प्रतिभा का लोहा माना। कारण संभवत: यह था कि फ़िल्मों की दुनिया चाहे जैसी रही हो, ये अपने काम में मगन रहते थे।

1953 ई. में तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री, भारत सरकार डॉ. बालकृष्ण केसकर के आग्रह पर नरेन्द्र शर्मा फ़िल्मों को छोड़कर आकाशवाणी चले आए। इस बीच उनके 'हमारी बात' फिल्म के अतिरिक्त 'भाभी की चूड़ियाँ', 'ज्वारभाटा' आदि फ़िल्मों के अनेक गीत प्रसिद्ध हो चुके थे। इसलिए नरेन्द्र शर्मा के पास अनेक फ़िल्मों के गीत लिखने के अनुरोध आने लगे। नरेन्द्र जी ने आकाशवाणी जाने से पहले और वहाँ से सेवानिवृत्त होने के बाद लगभग 50–55 फ़िल्मों के लिए लगभग 650 गीत लिखे। संगीतकारों के बीच लोकप्रिय उनके भजन इनके अतिरिक्त हैं। फ़िल्मी गीत-लेखन के प्रारंभिक दस वर्षों के दौरान नवकेतन कंपनी की चेतन आनंद द्वारा निर्देशित फ़िल्म–'अफ़सर' (1946 ई.), गजानन जागीरदार की 'जेलयात्रा' (1947 ई.), राजश्री प्रोडक्शंस की 'पुल' (1947 ई.) आदि अनेक फ़िल्मों के लिए उन्होंने गीत लिखे। 1948 ई. में उन्होंने प्रभात फिल्म कंपनी के लिए 'संत जनाबाई' नाम से मराठी के साथ-साथ हिन्दी में बनने वाली फ़िल्म के गीतों की रचना की। इस फ़िल्म के संगीत निर्देशक सुधीर फड़के थे। मराठी और हिन्दी गीतों की रचना साथ-साथ की गई। हिन्दी के गीत नरेन्द्र जी ने मराठी के अनुवाद करके नहीं स्वतंत्र रूप से लिखे। उस समय का सुधीर फड़के का संस्मरण उनकी आशुगीत-रचना को दर्शाता है। गीत-रचना का–"पहले दिन शुभारंभ हुआ, माडगुलकर लिखित भूपाली यानी प्रभाती से। '*प्रभात समयो पात ला, आता जाग बा विट्ठला।*' यह अनूठा प्रभात गीत था, जो संत जनाबाई की परंपरा के साथ उनके काल के लिए भी बड़ा समुचित रहा। मैंने उसे तुरंत स्वरबद्ध किया। तब तक नरेन्द्र जी हिन्दी प्रभात गीत लिखकर तैयार थे। उनका गीत मैंने पढ़ा और सच मानिए मैं फूला न समाया। मराठी के चमत्कार के साथ-साथ मेरे सामने हिन्दी का उसी कोटि का चमत्कार मौजूद था। असल में विट्ठल परमात्मा का वह रूप है जो महाराष्ट्र के हिन्दी भाषियों में प्रचलित नहीं है। इसे भलीभाँति समझकर नरेन्द्र जी ने लिखा था, '*प्रभात वंदना करे, जागो हे हरे, हे हरे, हे हरे*' '*उषा का दीप बाल सजाती गगन थाल, आरती उतारे जगत जागो साँवरे, जागो साँवरे, हे हरे।*' उनके मुँह से यह 'प्रभाती' या 'जागरण गीत' सुनते-सुनते मेरे मन में तर्ज़ तैयार हो रही थी।"

इसी फ़िल्म में एक स्थान पर संत ज्ञानेश्वर स्वरचित गीत गाते हुए दिखाए जाते हैं। यह मराठी संत साहित्य की अमर रचना है। नरेन्द्र शर्मा ने उन भावों को सुरक्षित रखते हुए उसी कोटि के गीतों की रचना की :

सपने में संपदा जो पाई .....
मोह करे मेरी-मेरी, तेरी न कमाई
संपदा जो पाई, तेरी न कमाई
तू है मेरी कहे सदा, धारा से किनारा
तोड़ नाता, छोड़ तीर, बहे जल धारा
पल में आई लहर, छिन में गँवाई ....

दरअसल, नरेन्द्र जी के गीत आम गीतों–चलते गीतों की तरह नहीं थे। उस समय चमकते-दमकते शब्दों को गीतों में पिरोकर गीत लिखने का रिवाज था। उसे इन्होंने बदला। भारतीय संस्कृति, लोक गीत-संगीत की समृद्ध परंपरा से जोड़कर उसे एक नया स्वरूप प्रदान किया। चाहे धार्मिक फ़िल्मों के गीत हों या सामाजिक फ़िल्मों के गीत। इनके सभी गीतों में साहित्यकार का रंग और भारत भूमि की सुगंध मिलती है जो इन्हें विशिष्ट बनाती है।

सन् 1951 ई. में 'मालती माधव' नामक फ़िल्म के गीतों का प्रणयन भी नरेन्द्र शर्मा ने किया था। इस फ़िल्म का एक गीत अत्यंत लोकप्रिय हुआ–'*बाँध प्रीति के डोर, मन ले के चितचोर दूर जाना ना*'। इसे आज भी सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। इस सबका कारण है : नरेन्द्र शर्मा की संगीतात्मकता। उनके गीतों में शब्दचयन, सांगीतिकता एवं लालित्य का योग हुआ है जो अन्यत्र दुर्लभ है। सन् 1954 ई. में 'रत्नघर' नामक फ़िल्म के सभी गीतों की रचना नरेन्द्र शर्मा द्वारा की गई। इनमें से एक गीत में नायिका अपने अरमानों के ध्वस्त हो जाने पर अपनी व्यथा-कथा इस प्रकार कहती है :

ऐसे हैं सुख सपन हमारे
बन-बनकर मिटते जाते जैसे,
बालू के घर नदी किनारे।।
लहरें आतीं बह-बह जातीं,
रेखाएँ बस रह-रह जातीं,
जाती लहरें कह-कह जातीं,
जाते कल को कौन पुकारे...

स्पष्ट है कि गीतकार ने मन के भावों को मूर्त्त करने के लिए ऐसे उपकरण साक्षात् उपस्थित कर दिए हैं कि गीत सीधे श्रोताओं के हृदय में संप्रेषित हो जाता है। चाहे 'कृष्ण' फ़िल्म हो या 'सजनी', लेखक ने स्वच्छ-सरल शब्दों में मन की

भावनाओं को अर्थमयता प्रदान कर गीत और कविता के अंतर को मिटा दिया है। 1956 ई. में निर्मित 'सजनी' के गीत में कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर राधा की व्याकुलता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है :

जा रे चंद्र जा रे चंद्र और कहीं जा रे,
गोकुल से कृष्णचंद्र जाएँगे सकारे।
वृंदावन सूना है सूना मन मेरा,
विधना कुछ ऐसी कर कल न हो सवेरा,
झरते नयन, भरते नयन डूब रहे तारे...

कथनीय है कि जब नरेन्द्र शर्मा फिल्मी दुनिया से जुड़े, तब श्रेष्ठ प्रतिभाएँ फ़िल्मों के प्रति आकर्षित हो रही थीं। हिन्दी कवि-कथाकार-साहित्यकार भी इससे जुड़ रहे थे। हिन्दुस्तानी सिनेमा उस समय एक संभावनाशील माध्यम के रूप में देखा जा रहा था। लोग अच्छे गीत-संगीत को महत्त्व देते थे। इसका आशय यह नहीं कि व्यावसायिकता उस समय फ़िल्मों में नहीं थी। किन्तु नरेन्द्र शर्मा फ़िल्मों की नक़ली-दिखावटी या व्यावसायिक दुनिया से दूर फ़िल्मों को साहित्य-संस्कृति से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। फ़िल्मों में कैरियर ढूँढ़ना उनका उद्देश्य नहीं था। इसलिए फ़िल्मी दुनिया में जाकर भी वे उसमें नहीं रमे। उन्होंने अपनी आंतरिक ऊर्जा बचाकर रखी। यही कारण है कि वे फ़िल्मों को कुछ अर्थपूर्ण दे पाए। न वे उससे त्रस्त हुए, न ही उससे उन्होंने पलायन किया। धीरे-धीरे सिनेमा और अधिक व्यावसायिक होता चला गया। स्पष्ट है कि साहित्य और जनजीवन की आकांक्षाओं से उसका संबंध अटूट नहीं बना रह सका, बल्कि वह पैसा कमाने का माध्यम बन गया। दरअसल, जिन लोगों के हाथों में सिनेमा रहा है वे उसे साहित्य और जीवन से नहीं जोड़ना चाहते। बल्कि वे उत्तेजना पैदा करके उससे सिर्फ़ पैसा कमाना चाहते रहे हैं। वैसे भी हिन्दी साहित्य और सिनेमा में तो शुरू से ही दूरी रही है। हिन्दी-भाषियों ने इस माध्यम की संभावनाओं पर गंभीरता से विचार नहीं किया। लेकिन अब मासमीडिया में फ़िल्मों की भूमिका पहचानी जा रही है।

नरेन्द्र शर्मा जिस प्रकार साहित्य में गीत-लेखक के रूप में शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गए थे, उसी प्रकार फ़िल्मों में भी उनके गीत शब्दाडंबर रहित, लय-तुक-ताल सहित और भावान्विति लेकर उपस्थित होते थे। 'भाभी की चूड़ियाँ' का उनका प्रसिद्ध गीत '*ज्योति कलश छलके*' के बोल उभरते ही आज भी मन उसकी अर्थगरिमा और लालित्य से विभोर हो जाता है। गीत-संगीतकारों ने नरेन्द्र जी के इस गीत के विषय में लिखा है : " 'ज्योति कलश' तो एक जगमगाता रत्न है। काल के बंधन से परे पहुँचाने वाले नरेन्द्र के गीतों में उसे असाधारण स्थान प्राप्त है।"

इस प्रकार फ़िल्मी गीतों के माध्यम से भी नरेन्द्र शर्मा ने हिन्दी की अप्रतिम सेवा की है। इनके माध्यम से सुसंस्कृत-सुरुचिपूर्ण गीतों का प्रचार-प्रसार हुआ है। इनके गीतों में जहाँ एक ओर संगीतात्मकता और शब्द लालित्य का ध्यान रखा गया है वहीं उन्हें साहित्यिक पुट देकर अर्थ-गांभीर्य भी प्रदान किया गया है।

आकाशवाणी

आकाशवाणी से नरेन्द्र शर्मा का संबंध 1947-48 ई. से ही जुड़ गया था। कारण, स्वतंत्रता के बाद रेडियो पर लेखकों-कवियों को अधिकाधिक बुलाने की परंपरा डाली जा रही थी। नए-नए कार्यक्रम खोजे-बनाए जा रहे थे। इसी प्रकार के कार्यक्रमों में एक था : कवि और कलाकार। इसमें कवियों को आमंत्रित किया जाता था। हिन्दी फ़िल्मों में गीत लिखने वाले हिन्दी कवि के रूप में नरेन्द्र शर्मा पहले से विख्यात थे। उन्हें इस कार्यक्रम के लिए सादर आमंत्रित किया गया। इसमें पहले कवि-मुख से गीत सुना जाता था। फिर उसे संगीतबद्ध कर किसी गायक या गायिका द्वारा गवाया जाता था। कवि नरेन्द्र शर्मा इस कार्यक्रम में भाग लेने आकाशवाणी गए तथा उन्होंने '*युग की सध्या कृषक वधू-सी/ किसका पंथ निहार रही है*' गीत पढ़ा। इसके तुरंत बाद प्रसिद्ध संगीतकार अनिल विश्वास जी ने इसे संगीतबद्ध किया तथा सुश्री लता मंगेशकर ने इसे रेडियो पर गाया। रेडियो के नियमित श्रोता डॉ. रामविलास शर्मा इसे आकाशवाणी पर सुनकर रोमांचित हो उठे। उन्होंने इस गीत का स्मरण करते हुए लिखा : 'आज भी मन की किसी मृदुल टहनी पर ताजा खिले पुष्प की तरह (इस गीत की पंक्ति) रस विभोर करती रहती है।' (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 70) फिर तो इनका रेडियो आने-जाने का सिलसिला चल निकला । नरेन्द्र जी ने एक रेडियो रूपक लिखा–'चाँद मेरा साथी'। इसमें इन्होंने चाँद से संबंधित अपनी कई कविताएँ जो विभिन्न मूड्स की थीं, उन्हें इस प्रकार एक रूपक में पिरोया कि चाँद के साथ मनुष्य की अनेक मन:स्थितियाँ सामने आ जाती थीं। इस प्रकार कुछ अन्य रूपकों की रचना भी नरेन्द्र जी ने रेडियो के लिए की थी।

फिर कुछ ऐसा हुआ कि साहित्यकारों को आकाशवाणी के बड़े पदों पर लाकर नए-नए, सुरुचिपूर्ण और लोकप्रिय कार्यक्रम निर्माण करने की योजना बनी। आकाशवाणी के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उस समय हिन्दी साहित्यकारों में सुमित्रानंदन पंत से लेकर भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट आदि अनेक साहित्यकार उससे जुड़े। इसी योजना के अंतर्गत नरेन्द्र शर्मा भी आकाशवाणी, बंबई में नियुक्त किए गए। उस समय रेडियो सीलोन फ़िल्मी गीतों के सहारे भारतीय श्रोताओं को अपने आकर्षण में बाँधे हुआ था। तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री डॉ. केसकर इन गीतों से आजिज़ आ गए थे। मगर पब्लिक गाने

सुनना चाहती थी। इसलिए इन्होंने एक व्यापक कार्यक्रम बनाया कि आकाशवाणी के बड़े केन्द्रों पर लाइट म्यूज़िक यूनिट यानी सुगम संगीत विभाग बनाए जाएँ जहाँ फ़िल्मी गीतों की तरह का छिछोरापन या बाज़ारूपन न हो। श्रोताओं को ऐसे गीत सुनने को मिलें जिससे उनका स्वस्थ मनोरंजन हो सके। ऐसे में आकाशवाणी पर नए प्रकार के गीत प्रसारित करने की ज़िम्मेदारी नरेन्द्र शर्मा पर आन पड़ी। नरेन्द्र शर्मा ने तत्कालीन सुगम संगीत विभाग को कलात्मक रूप देने की विस्तृत योजना बनाई। फ़िल्मी दुनिया के अपने संबंधों का इस्तेमाल करते हुए इन्होंने प्रसिद्ध संगीतकारों से प्रसार गीतों की धुनें बनवाईं। नौशाद, एस.डी. बर्मन, सी. रामचंद्र, अनिल विश्वास, उस्ताद अकबर अली खाँ आदि के तथा लता मंगेशकर, आशा भोंसले, गीता राय, सुमन कल्याणपुर, मुकेश, मन्ना डे, मोहम्मद रफ़ी, तलअत महमूद, सुधा मल्होत्रा आदि सब लोग इनके बुलावे पर रेडियो पर आए। इन्होंने आकाशवाणी पर गाया। यह कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हुआ था। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी के लिए जो अद्वितीय कार्य नरेन्द्र शर्मा ने किया, वह था - मनोरंजन परक गीतों का कार्यक्रम–'विविधभारती' का ढाँचा खड़ा करना तथा उसकी प्रस्तुति। कथनीय है कि इन्होंने अखिल भारतीय वैविध्यपूर्ण गीतों का न केवल ढाँचा खड़ा किया वरन् उसकी ऐसी सुरुचिपूर्ण प्रस्तुति की कि श्रोता रेडियो गोवा अथवा रेडियो सीलोन को भूलने लगे। कहा गया कि यह "आकाशवाणी का ऐसा इन्क़लाबी क़दम था, जिसने न सिर्फ़ उसकी खोई हुई साख वापस दिलाई, बल्कि आकाशवाणी के श्रोताओं में नई रुचि पैदा की और उनमें हलके-फुलके प्रोग्रामों द्वारा राष्ट्रीयता और देशप्रेम का अहसास जगाया और आगे चलकर यह कार्यक्रम आकाशवाणी के लिए 'लक्ष्मी का अवतार' साबित हुआ।" (रिफ़अत सरोश, *शेष-अशेष*, पृष्ठ 243)

जैसा कि कहा गया नरेन्द्र जी नामकरण से लेकर–'विविधभारती' के स्वरूप निर्धारित करने और उसके निर्माण के संपूर्ण सूत्रधार बने। इस कार्यक्रम को संपन्न करने के लिए इन्हें अथक परिश्रम करना पड़ा। इन्होंने पुराने फ़िल्मी और ग़ैर फ़िल्मी गीतों को एक-एक करके सुना। इसमें से सिर्फ दस प्रतिशत गीत ही काम में आते थे, शेष व्यर्थ। इन गीतों पर इतना अधिक परिश्रम किया कि नरेन्द्र जी बीमार पड़ गए। मगर इन्होंने अच्छे-अच्छे गीत पसंद किए। विख्यात संगीत-निर्देशकों ने उन्हें संगीतबद्ध किया था। चोटी के गीतकारों से उन्हें गवाया गया। यह अपने आप में अनूठा कार्यक्रम बना। 'विविधभारती' कार्यक्रम इतना लोकप्रिय हुआ कि रेडियो सीलोन की छवि धूमिल होने लगी। आप थोड़े समय में ही 'विविधभारती' के चीफ़ प्रोड्यूसर बना दिए गए। इसमें अनेक प्रयोग करते हुए ग़ज़लों और गीतों का मिलाजुला कार्यक्रम 'गज़रा' बनाया गया और उसे 'हलकी-फुलकी चटाखेदार हिन्दुस्तानी ज़बान की कंपेयरिंग में पिरोया'। इस प्रकार

के पंचरंगी प्रोग्राम लोगों को बहुत पसंद आए। उनकी यह यूनिट एकजुट होकर काम करती थी। भाषा के विषय में अवश्य मतवैभिन्य रहता था। नरेन्द्र जी की मान्यता थी कि ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जो संस्कृत के निकट हो क्योंकि वही देश के विभिन्न हिस्सों में सर्वाधिक समझी जाएगी। 'विविधभारती' का नामकरण इसी की पुष्टि करता है। 'विविधभारती' के अतिरिक्त 'पत्रावली', 'बंदनवार', 'मंजूषा', 'स्वरसंगम', 'रत्नाकर' आदि भी ऐसे ही नाम हैं, जो तत्सम प्रधान हैं।

दूसरे, आकाशवाणी की पुरानी मान्यताओं और सरकारी तंत्र के तले दबे रेडियो के ख़िलाफ़ उनमें रोष था जिसे सुधारने के लिए ये अपने स्तर पर कार्य करते रहते थे। अन्य सुधार करने वालों को प्रोत्साहित भी करते थे। अमीन सयानी का वक्तव्य इसका प्रमाण है : "आकाशवाणी से पुराने जाले हटाकर उनमें नया उत्साह जगाने की मेरी बेताबी पंडित जी ने देखी। परिवर्तन की राहों पर हठधर्मी की दीवारों से मेरा टकराना देखा और देखकर मुस्कराए। और कहा....रुको नहीं, डिगो नहीं। जो तुम लोग कर रहे हो, सब उचित है। इसे अपना मिशन समझकर बस लगे रहो। एक न एक दिन तुम्हारी बातें सच साबित होंगी और स्वीकार भी कर ली जाएँगी।"

1953 ई. से 1971–सेवा-निवृत्ति तक नरेन्द्र शर्मा ने एकाग्रचित्त और पूरे मनोयोग से आकाशवाणी की सेवा की। हालाँकि इन्हें फ़िल्मों में गीत लिखने की अनुमति प्राप्त थी। पर इन्होंने आकाशवाणी के सेवाकाल में फ़िल्मों में गीत नहीं लिखे। इनके इसी महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण इन्हें प्रोड्यूसर-एमेरिटस बनाया गया, परन्तु ये निर्लिप्त भाव से अपने काम में संलग्न रहे।

× × ×

धारावाहिक 'महाभारत'

जीवन के उत्तरार्द्ध में नरेन्द्र शर्मा भारतीय संस्कृति, स्वदेश-प्रेम और लोकजीवन में पैठी अध्यात्म चेतना से युक्त होते चले गए। उन्होंने संस्कृति की रूढ़ि को त्याग उसके जीवंत पक्षों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य अपने अप्रतिम धारावाहिक 'महाभारत' द्वारा किया। भारत की गौरवशाली परंपरा, उसके गौरव ग्रंथ *रामायण*, *महाभारत* में तो वे रच-बस ही गए थे। उन्होंने इन्हें आत्मसात कर लिया था। यह उन्होंने किसी उद्देश्य विशेष या उसे व्यवसाय बनाने के लिए नहीं किया था। बल्कि भारत की सदियों पुरानी आत्मा इन ग्रंथों में बसती है। अत: भारतीय लोक-जीवन को समझने-बूझने के लिए इन्हें जानना प्रत्येक भारतीय के लिए बहुत ज़रूरी है। इन्हें ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने ज्योतिष के विभिन्न शास्त्रों में पैठकर इस विद्या में अच्छी महारत हासिल कर ली थी। इससे भी इनकी ख्याति बढ़ी थी। बहुत

से लोग इनसे कुंडली जँचवाने आते। परन्तु इसे इन्होंने कभी अपना व्यवसाय नहीं बनाया। यह इनकी आय का साधन कभी नहीं बना। सिवाय इसके कि कवि नरेन्द्र शर्मा–अब पंडित नरेन्द्र शर्मा के रूप में विख्यात होने लगे। इन्हें पुराने पंडितों की तरह वैद्यक का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। वे बीमारी के अनुसार अनेक नुस्खे बाँध देते थे जो प्रायः लाभदायक होते थे। यह सब इनके अपने ज्ञान को बाँटने, दूसरे को लाभ पहुँचाने का अपना तरीक़ा था। लोक में व्याप्त *मानस* का पाठ तो ये नियमित करते थे। कभी-कभी सारी रात उसे पढ़ते और भाव-विह्वल हो रोते जाते। बंबई आने के बाद तो एक मानस-गोष्ठी बन गई थी जिसमें इनके अनेक इष्ट-मित्र इकट्ठा होते। पाठ होता। नरेन्द्र जी गहन-गूढ़ अर्थ समझाते। सालों-साल यह सिलसिला चलता रहा। इसी गोष्ठी में 'दूरदर्शन' पर 'रामायण' धारावाहिक के प्रस्तुतकर्त्ता श्री रामानंद सागर आया करते थे। उन्होंने लिखा है : "मैं *रामायण* को जितना थोड़ा-बहुत समझ पाया हूँ, वह अंतरंग (गोष्ठी) में बैठ-बैठकर पं. नरेन्द्र जी जैसे दिग्गज विद्वानों की बातें सुन-सुनकर ही समझ पाया हूँ।" (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 238) ये ग्रंथ भारतीय साहित्य और संस्कृति के अक्षय स्रोत हैं जिनमें रमना ये अपना धर्म समझते थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के विघटित जीवन-मूल्यों के बीच ये दुःखी होकर इसे अपने देश की नियति मान अपने ईश्वर विशेषतः राम और कृष्ण के प्रति समर्पित हो जाते। किन्तु आत्मसम्मान इतना कि अपने प्रभु के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं समर्पण नहीं। चाहे कितने अभाव या कष्ट में हों–कभी दीनता नहीं। जैसा कि कहा गया *रामायण* और *महाभारत* उनके प्रिय ग्रंथ रहे। यही कारण है कि इनके सभी प्रबंधकाव्य किसी-न-किसी प्रकार *महाभारत* से जुड़े हुए मिलते हैं। उक्त प्रबंध काव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि कवि नरेन्द्र शर्मा *महाभारत* की कथा, उसके पात्रों की मिथकीय अवधारणा, उनके मानव सुलभ गुण-दोष, उनकी दार्शनिकता में गहरे धँसे हुए थे। इसी का एक अन्य प्रमाण है : बी.आर. चोपड़ा कृत दूरदर्शन धारावाहिक 'महाभारत'। पं. नरेन्द्र शर्मा इस लोकप्रिय 'महाभारत' धारावाहिक के कब मुख्य प्रेरणास्रोत बन गए–किसी को पता ही नहीं चला। यह यों ही नहीं हो गया। इसके पीछे छिपा था उनका *महाभारत* संबंधी ज्ञान। यह ज्ञान सामग्री इन्हें अनायास ही नहीं मिल गई थी। अनेक प्राचीन जानकारियों के अतिरिक्त इन्होंने उस पर शोध करने के लिए परिश्रम किया। ये प्राचीन ज्ञान के अप्रतिम संग्रहालय–पुणे स्थित भांडारकर संस्थान गए। व्यासकृत *महाभारत* के अतिरिक्त अन्य सूत्रों आदि का अध्ययन-मनन किया। सारी सामग्री को जाँचा-परखा। तव ये उसे उपयोग में लाए। ये इस कथा में इतने तन्मय हो जाते कि 'महाभारत' धारावाहिक के कलाकारों के समक्ष कुछ ऐसे व्यवहार करते कि सब-कुछ उनके सामने ही घटित हो रहा हो। *महाभारत* धारावाहिक के भीष्म

पितामह बनने वाले कलाकार ने अपने एक संस्मरण में लिखा है : "जिस तरह द्वापर युग के भीष्म को धर्म का पूरा ज्ञान था, वैसे ही पंडित जी को महाभारत का पूरा ज्ञान था। 'महाभारत' बनाने का कोई क़दम उनसे पूछे बगैर नहीं उठाया जाता था। टीका कैसा होना चाहिए (किसी किरदार के माथे पर) इस छोटी-सी बात से लेकर आयु, रूप-रंग, वेशभूषा—ये सभी बातें पंडित जी ऐसे बताते थे जैसे वे वहाँ मौजूद थे।" (मुकेश खन्ना, *शेष-अशेष*, पृष्ठ 225)

किसी धारावाहिक के लिए दृश्य-संरचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। नरेन्द्र शर्मा 'महाभारत' की जो दृश्य-संरचना करते थे—उसे इतने भाव-विभोर होकर सुनाते कि धारावाहिक के सभी कलाकार मंत्र-मुग्ध हो इनके प्रत्येक हाव-भाव को नोट करते चले जाते। 'हमारे भीष्म पितामह' लेख में मुकेश खन्ना ने लिखा है : "जब 'महाभारत' की स्टोरी सिटिंग में पंडित जी 'महाभारत' का कोई दृश्य सुनाते हैं तो वो अक्सर इतने तन्मय हो जाते कि खड़े होकर सुनाने लगते। 'तब श्रीकृष्ण चाबुक लेकर दौड़े' ऐसे लगता है जैसे वो खुद *महाभारत* के मैदान में हों। इतना सजीव चित्रण करते हैं कि हम सबके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वो जो कुछ कहते हैं, उनके एक-एक शब्द क़ीमती होते हैं और कुछ छूट न जाए इसका हमने उपाय किया है। एक छोटा टेपरिकार्डर रख दिया जाता है और उनके हर शब्द रिकॉर्ड कर लिए जाते हैं।" (वही, पृष्ठ 225-226)

कथा या दृश्य-संरचना ही नहीं उन्होंने धारावाहिक के प्रत्येक पात्र को उस युग में जीते हुए उसके सारे गुणों-अवगुणों के साथ अपनी आँखों के सामने साक्षात् कर लिया था। इसीलिए ये प्रत्येक पात्र के मर्म तक सहज ही पहुँच जाते थे और अपनी अनूठी कथा शैली से धारावाहिक के कलाकारों को पात्रों की आत्मा के दर्शन करा देते थे। यही कारण है कि 'महाभारत' का प्रत्येक कलाकार इनसे मिलकर एक बार अपना किरदार जान लेना ज़रूरी समझता था। 'महाभारत' धारावाहिक के नरेन्द्र जी द्वारा लिखे गीत तो श्लोक का काम करते थे जिससे वातावरण अपनी दैनंदिनी या रोज़मर्रापन से कटकर उदात्तता और पवित्रता के उच्च स्तर पर पहुँच जाता था :

राजकुमारों को निरख, हर्षित जन समुदाय।
आज हस्तिनापुर नगर, फूला नहीं समाय।।

अथवा शंख-ध्वनि के साथ गाया जाने वाला यह दोहा किसे स्मरण नहीं होगा :

शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत।
अंत यही, ले जाएगा कुरुक्षेत्र पर्यन्त ।।

इस धारावाहिक का स्मरण करते हुए प्रसिद्ध कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने लिखा है : "विगत वर्ष जब 'महाभारत' का सीरियल प्रारंभ हुआ, तो पटकथा-लेखक और गीत-रचनाकार के रूप में उनका नाम देखकर मैं पुलकित हो उठा था। वे शब्द-ब्रह्म के साधक और संवेदन तत्त्व के अनन्य पारखी थे। आज भी 'महाभारत' के मंगलाचरण को मंत्र की गरिमा प्रदान करने वाला शब्द 'दिग्घोषित हुआ .....' का उद्घोष दिगदिगंत को प्रतिध्वनित करता और शब्दों को सार्थक करता प्रतीत होता है। उनके दोहों की अर्थगर्भिता और मार्मिकता तो कहानी बनकर रह गई है।" (वही, पृष्ठ 86-87)

इतने कठिन परिश्रम के बावजूद पं. नरेन्द्र शर्मा ने कम पैसा या कम यश मिलने की शिकायत या व्यग्रता कभी नहीं दिखाई। हमेशा इसे दायित्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य माना। कभी इसे अपनी सफलता के रूप में नहीं देखा। इनसे धारावाहिक के विषय में पूछे जाने पर इन्होंने हमेशा यही कहा "महाभारत की संपूर्ण पटकथा के गुंफन को सजीव एवं प्रभावशाली दृश्यावलियों की संरचना द्वारा तथा पात्रों के कुशल अभिनय एवं संवाद रचना में पात्रगत चरित्र को उद्घाटित करने की अद्‌भुत सामर्थ्य के कारण हम सामान्य जन मानस के विश्वास को प्राप्त करने में सफल हो सके हैं।" (वही, पृष्ठ 135) सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित करने वाले धारावाहिक 'महाभारत' के पीछे नरेन्द्र शर्मा का श्रम और प्रेरणा रही है जो प्रकट में प्राय: अलक्षित रह जाती है।

जैसा कि पीछे कहा गया *महाभारत* के समान *रामायण* या *रामचरितमानस* भी नरेन्द्र शर्मा के प्रिय ग्रंथ रहे हैं। जीवन के उत्तरार्द्ध में ये रामकथा से संबंधित काव्य-रचना करने में संलग्न थे। यह उन्होंने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया था। (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 199) भरत के चरित्र को केन्द्र बनाकर उन्होंने कुछ काव्य-रचना की थी जो अप्रकाशित है। प्रभु राम और कृष्ण इनके आराध्य देव थे। इनसे संबंधित इनके अनेक भजन गीत-संगीतकारों के मध्य अपनी संगीतात्मकता के कारण अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं । कुछ प्रसिद्ध कंपनियों ने इन्हें प्रस्तुत भी किया है। आकाशवाणी-दूरदर्शन पर इन्हें अकस्मात् सुना भी जा सकता है।

प्रसिद्ध कंपनी एच.एम.वी. ने तुलसीकृत रामायण को एल. पी. रिकार्डों पर भी प्रस्तुत किया है जिसे मुकेश, मन्ना डे जैसे गायकों ने अपना स्वर प्रदान किया है। इसके संगीत-निर्देशक थे—श्री मुरली मनोहर स्वरूप तथा इसके लिए सामग्री-संकलन संपादन का कार्य किया था पं. नरेन्द्र शर्मा ने। नरेन्द्र जी ने *मानस* से कुछ इस प्रकार दोहे-चौपाइयों को एकत्रित किया कि रामकथा का प्रारंभ से अंत तक कथा-सूत्र भी सँभला रहा और सुनते हुए यह भी प्रतीत नहीं हुआ कि रामकथा का कोई प्रमुख प्रसंग छूट गया है। समय-समय पर एक-एक कांड के रिकार्ड श्रोताओं तक पहुँचते रहे। इसमें सात वर्ष का समय लगा। "इन सात वर्षों

में हर कांड का संकलन करके, रिकार्डिंग के हर दिन पं. चंद्रशेखर पांडे के साथ नरेन्द्र स्टूडियो में आठ-दस घंटे बैठते। मुकेश जी के एक-एक शब्द को, एक-एक स्वर को आँखें मूँदे सुनते, त्रुटियाँ सुधारते।" (वही, पृष्ठ 272) इसी प्रकार 'सुंदर कांड' भी एक ग्रामोफ़ोन कंपनी ने उनके निर्देशन में रिकार्ड करवाई।

इस प्रकार के कार्य नरेन्द्र शर्मा के लिए आय के साधन के साथ निष्ठा से अधिक जुड़े हुए थे। इन्होंने इन्हें प्रसिद्धि प्रदान की। ये करोड़ों की संख्या में बिके पर व्यावहारिक बुद्धि न होने के कारण इन बारह रिकार्डों से इनका कुछ आर्थिक हित-संपादन नहीं हुआ। उनके भजनों को पं॰ भीमसेन जोशी, सुश्री लता मंगेशकर आदि अनेक गायकों ने गाया है। नरेन्द्र जी ने मध्य युग के अनेक कवियों रहीम, देव, रसखान आदि की कविताओं का संकलन करके अनेक संगीतकारों को दिया। इन्हें किस प्रकार स्वरबद्ध करना चाहिए–यह भी बताया। संगीत की दुनिया में इनके ये कार्य भी महत्त्वपूर्ण बने हुए हैं। ❑

7

उपसंहार

नरेन्द्र छायावादोत्तर काल या छायावाद के तुरंत बाद आने वाले कवियों में प्रमुख हैं। इनकी लगभग साठ वर्षों की लंबी काव्ययात्रा नारी, प्रकृति, वैयक्तिकता-सामाजिकता, दर्शन और अध्यात्म के क्षितिजों का स्पर्श करती हुई छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की काव्य-संवेदना के सर्वाधिक निकट दिखाई देती है। वैसे भी इनके प्रारंभिक गीत और कविताएँ छायावाद की काव्यानुभूति से प्रभावित और पोषित हैं। पर शीघ्र ही इनकी कविता का स्वर छायावाद से भिन्न हो अपना मुहावरा गढ़ने लगता है। भले ही छायावादी कविता के समान प्रेम, सौन्दर्य और संवेदना की सूक्ष्मता इनके यहाँ भी आई हो परंतु अगोचर तत्त्वों को गोचर रूप में पाने का आग्रह इनके यहाँ बढ़ता चला जाता है। कवि ने स्वयं कहा है–"विदेह को संदेह में देखना उसे बाहुपाश में बाँध लेना चाहता था। इस उद्देश्य से मैं अपनी भावधारा में ख़ूब डूबा और उतराया हूँ और थककर कभी-कभी तटस्थ भी हुआ हूँ।" यह तटस्थता कवि नरेन्द्र शर्मा में थोड़ी बाद में आती है। प्रारंभ में तो भावनात्मक आवेग युक्त गीत ही अधिक मिलते हैं। इनमें नारी सौन्दर्य और उसके सुकुमार वैभव का चित्रण बहुलता के साथ हुआ है। साथ ही, प्रेमी मन की प्यास, उत्कंठा, लालसा, अतृप्ति, निराशा और अवसाद के चित्र भी पर्याप्त मात्रा में आए हैं। *प्रवासी के गीत* और *पलाशवन* काव्य-संग्रहों के गीत इसके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

दरअसल, नवशिक्षित मध्यवर्ग के ये युवा कवि छायावाद से प्रेरणा लेते हुए भी उन काव्य-प्रतिमानों के अनुरूप कविता नहीं लिख पा रहे थे। ये अपनी इच्छाओं-कामनाओं को सीधी अभिव्यक्ति देना श्रेयस्कर समझते थे। किन्तु सामाजिक मर्यादाओं की जकड़बंदी में विवश हो प्रत्युत्तर न मिलने पर आकुलता का अनुभव कर रहे थे। फिर बाहर, स्वातंत्र्य-आंदोलन में भी अपेक्षित सफलता नहीं मिल रही थी। ऐसे में इन कवियों के अंदर तनाव, अवसाद और निराशा पैदा होने लगी। प्रिया से मिलन की आशा धूमिल पाकर ये लगभग चीत्कार करते हुए लिखता है :

यदि मुझे उस पार में भी
मिलन का विश्वास होता
सत्य कहता हूँ
न मैं असहाय व निरुपाय होता।

नरेन्द्र शर्मा आदि उत्तरछायावादी कवि अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी के कवियों से इस रूप में भी भिन्न दिखाई देते हैं कि प्रसाद, निराला, पंत की प्रेम कविताओं में मर्यादा और संकोच का आवरण हमेशा रहा है परंतु इन कवियों ने खुली अभिव्यक्ति के द्वार खोले। नरेन्द्र शर्मा के गीतों से प्रतीत होता है मानो इनका प्रिय इनके सामने मौजूद हो और ये अपना दु:ख-दर्द उससे कहना चाहते हों। छायावादी कवियों के समान इनका भी अपना एक कल्पित संसार था। प्रिय-प्रिया के इर्द-गिर्द घूमता हुआ। इनका बाहरी जीवन-जगत से अधिक सरोकार नहीं था। परंतु नरेन्द्र अपने शारीरिक एवं ऐन्द्रिय आकर्षण की अभिव्यक्ति जितने नि:संकोच भाव से करते तथा निराशा और अवसाद के चित्र खींचते थे—वे पाठकों—श्रोताओं पर जादू का काम करते थे। '*आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे*' या '*चिर विरह की इस अमा में, मैं शमा बन जल रहा हूँ*' जैसी मर्मस्पर्शी गीत-पंक्तियाँ प्रत्येक पाठक की जबान पर होती थीं।

प्रवासी के गीत की कुछ कविताओं में कवि अपने से थोड़ा बाहर निकल प्रकृति को भी अपने भाव-संसार में शामिल कर लेता। अब वह जीवन से नया समझौता करने की चेष्टा करता है। *पलाशवन* की अनेक कविताओं में पलाश, चाँदनी, पर्वत, नदी, झरने, कुमुद, नीम आदि का निखरा हुआ रूप देखा जा सकता है :

यह खुला नभ, यह धुला नभ,
खिल रही यह चाँदनी अनमोल
यह अमृत की वृष्टि, खिलती
कुमुदिनी-सी सृष्टि दृग-उर खोल।

कवि प्रकृति की शीतल स्नेह-छाया में अपनी बेचैनी से शांति का अनुभव करता है। यह प्रकृति अब छायावादी कवियों के समान उनके कौतूहल और जिज्ञासा को जन्म नहीं देती। बल्कि एक भावबोध जाग्रत करती है, एक आत्मीय स्पंदन प्रदान करती है। प्रकृति मानवीय भावों के साथ सजीव हो उठती है :

मैं उठा, उठा वह, जिधर चला,
मेरे संग-संग चल दिया चाँद
मैं गीतों में वह ओसों में
बरसा औ रोया किया चाँद!

भावनाओं को अर्थमयता प्रदान कर गीत और कविता के अंतर को मिटा दिया है। 1956 ई. में निर्मित 'सजनी' के गीत में कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर राधा की व्याकुलता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है :

जा रे चंद्र जा रे चंद्र और कहीं जा रे,
गोकुल से कृष्णचंद्र जाएँगे सकारे।
वृंदावन सूना है सूना मन मेरा,
विधना कुछ ऐसी कर कल न हो सवेरा,
झरते नयन, भरते नयन डूब रहे तारे...

कथनीय है कि जब नरेन्द्र शर्मा फ़िल्मी दुनिया से जुड़े, तब श्रेष्ठ प्रतिभाएँ फ़िल्मों के प्रति आकर्षित हो रही थीं। हिन्दी कवि-कथाकार-साहित्यकार भी इससे जुड़ रहे थे। हिन्दुस्तानी सिनेमा उस समय एक संभावनाशील माध्यम के रूप में देखा जा रहा था। लोग अच्छे गीत-संगीत को महत्त्व देते थे। इसका आशय यह नहीं कि व्यावसायिकता उस समय फ़िल्मों में नहीं थी। किन्तु नरेन्द्र शर्मा फ़िल्मों की नक़ली-दिखावटी या व्यावसायिक दुनिया से दूर फ़िल्मों को साहित्य-संस्कृति से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। फ़िल्मों में कैरियर ढूँढ़ना उनका उद्देश्य नहीं था। इसलिए फ़िल्मी दुनिया में जाकर भी वे उसमें नहीं रमे। उन्होंने अपनी आंतरिक ऊर्जा बचाकर रखी। यही कारण है कि वे फ़िल्मों को कुछ अर्थपूर्ण दे पाए। न वे उससे त्रस्त हुए, न ही उससे उन्होंने पलायन किया। धीरे-धीरे सिनेमा और अधिक व्यावसायिक होता चला गया। स्पष्ट है कि साहित्य और जनजीवन की आकांक्षाओं से उसका संबंध अटूट नहीं बना रह सका, बल्कि वह पैसा कमाने का माध्यम बन गया। दरअसल, जिन लोगों के हाथों में सिनेमा रहा है वे उसे साहित्य और जीवन से नहीं जोड़ना चाहते। बल्कि वे उत्तेजना पैदा करके उससे सिर्फ़ पैसा कमाना चाहते रहे हैं। वैसे भी हिन्दी साहित्य और सिनेमा में तो शुरू से ही दूरी रही है। हिन्दी-भाषियों ने इस माध्यम की संभावनाओं पर गंभीरता से विचार नहीं किया। लेकिन अब मासमीडिया में फ़िल्मों की भूमिका पहचानी जा रही है।

नरेन्द्र शर्मा जिस प्रकार साहित्य में गीत-लेखक के रूप में शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गए थे, उसी प्रकार फ़िल्मों में भी उनके गीत शब्दाडंबर रहित, लय-तुक-ताल सहित और भावान्विति लेकर उपस्थित होते थे। 'भाभी की चूड़ियाँ' का उनका प्रसिद्ध गीत '*ज्योति कलश छलके*' के बोल उभरते ही आज भी मन उसकी अर्थगरिमा और लालित्य से विभोर हो जाता है। गीत-संगीतकारों ने नरेन्द्र जी के इस गीत के विषय में लिखा है : " 'ज्योति कलश' तो एक जगमगाता रत्न है। काल के बंधन से परे पहुँचाने वाले नरेन्द्र के गीतों में उसे असाधारण स्थान प्राप्त है।"

इस प्रकार फ़िल्मी गीतों के माध्यम से भी नरेन्द्र शर्मा ने हिन्दी की अप्रतिम सेवा की है। इनके माध्यम से सुसंस्कृत-सुरुचिपूर्ण गीतों का प्रचार-प्रसार हुआ है। इनके गीतों में जहाँ एक ओर संगीतात्मकता और शब्द लालित्य का ध्यान रखा गया है वहीं उन्हें साहित्यिक पुट देकर अर्थ-गांभीर्य भी प्रदान किया गया है।

आकाशवाणी

आकाशवाणी से नरेन्द्र शर्मा का संबंध 1947-48 ई. से ही जुड़ गया था। कारण, स्वतंत्रता के बाद रेडियो पर लेखकों-कवियों को अधिकाधिक बुलाने की परंपरा डाली जा रही थी। नए-नए कार्यक्रम खोजे-बनाए जा रहे थे। इसी प्रकार के कार्यक्रमों में एक था : कवि और कलाकार। इसमें कवियों को आमंत्रित किया जाता था। हिन्दी फ़िल्मों में गीत लिखने वाले हिन्दी कवि के रूप में नरेन्द्र शर्मा पहले से विख्यात थे। उन्हें इस कार्यक्रम के लिए सादर आमंत्रित किया गया। इसमें पहले कवि-मुख से गीत सुना जाता था। फिर उसे संगीतबद्ध कर किसी गायक या गायिका द्वारा गवाया जाता था। कवि नरेन्द्र शर्मा इस कार्यक्रम में भाग लेने आकाशवाणी गए तथा उन्होंने '*युग की सध्या कृषक वधू-सी/ किसका पंथ निहार रही है*' गीत पढ़ा। इसके तुरंत बाद प्रसिद्ध संगीतकार अनिल विश्वास जी ने इसे संगीतबद्ध किया तथा सुश्री लता मंगेशकर ने इसे रेडियो पर गाया। रेडियो के नियमित श्रोता डॉ. रामविलास शर्मा इसे आकाशवाणी पर सुनकर रोमांचित हो उठे। उन्होंने इस गीत का स्मरण करते हुए लिखा : 'आज भी मन की किसी मृदुल टहनी पर ताजा खिले पुष्प की तरह (इस गीत की पंक्ति) रस विभोर करती रहती है।' (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 70) फिर तो इनका रेडियो आने-जाने का सिलसिला चल निकला । नरेन्द्र जी ने एक रेडियो रूपक लिखा-'चाँद मेरा साथी'। इसमें इन्होंने चाँद से संबंधित अपनी कई कविताएँ जो विभिन्न मूड्स की थीं, उन्हें इस प्रकार एक रूपक में पिरोया कि चाँद के साथ मनुष्य की अनेक मन:स्थितियाँ सामने आ जाती थीं। इस प्रकार कुछ अन्य रूपकों की रचना भी नरेन्द्र जी ने रेडियो के लिए की थी।

फिर कुछ ऐसा हुआ कि साहित्यकारों को आकाशवाणी के बड़े पदों पर लाकर नए-नए, सुरुचिपूर्ण और लोकप्रिय कार्यक्रम निर्माण करने की योजना बनी। आकाशवाणी के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उस समय हिन्दी साहित्यकारों में सुमित्रानंदन पंत से लेकर भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट आदि अनेक साहित्यकार उससे जुड़े। इसी योजना के अंतर्गत नरेन्द्र शर्मा भी आकाशवाणी, बंबई में नियुक्त किए गए। उस समय रेडियो सीलोन फ़िल्मी गीतों के सहारे भारतीय श्रोताओं को अपने आकर्षण में बाँधे हुआ था। तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री डॉ. केसकर इन गीतों से आजिज़ आ गए थे। मगर पब्लिक गाने

सुनना चाहती थी। इसलिए इन्होंने एक व्यापक कार्यक्रम बनाया कि आकाशवाणी के बड़े केन्द्रों पर लाइट म्यूज़िक यूनिट यानी सुगम संगीत विभाग बनाए जाएँ जहाँ फ़िल्मी गीतों की तरह का छिछोरापन या बाज़ारूपन न हो। श्रोताओं को ऐसे गीत सुनने को मिलें जिससे उनका स्वस्थ मनोरंजन हो सके। ऐसे में आकाशवाणी पर नए प्रकार के गीत प्रसारित करने की ज़िम्मेदारी नरेन्द्र शर्मा पर आन पड़ी। नरेन्द्र शर्मा ने तत्कालीन सुगम संगीत विभाग को कलात्मक रूप देने की विस्तृत योजना बनाई। फ़िल्मी दुनिया के अपने संबंधों का इस्तेमाल करते हुए इन्होंने प्रसिद्ध संगीतकारों से प्रसार गीतों की धुनें बनवाईं। नौशाद, एस.डी. बर्मन, सी. रामचंद्र, अनिल विश्वास, उस्ताद अकबर अली खाँ आदि के तथा लता मंगेशकर, आशा भोंसले, गीता राय, सुमन कल्याणपुर, मुकेश, मन्ना डे, मोहम्मद रफ़ी, तलअत महमूद, सुधा मल्होत्रा आदि सब लोग इनके बुलावे पर रेडियो पर आए। इन्होंने आकाशवाणी पर गाया। यह कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हुआ था। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी के लिए जो अद्वितीय कार्य नरेन्द्र शर्मा ने किया, वह था – मनोरंजन परक गीतों का कार्यक्रम–'विविधभारती' का ढाँचा खड़ा करना तथा उसकी प्रस्तुति। कथनीय है कि इन्होंने अखिल भारतीय वैविध्यपूर्ण गीतों का न केवल ढाँचा खड़ा किया वरन् उसकी ऐसी सुरुचिपूर्ण प्रस्तुति की कि श्रोता रेडियो गोवा अथवा रेडियो सीलोन को भूलने लगे। कहा गया कि यह "आकाशवाणी का ऐसा इन्क़लाबी क़दम था, जिसने न सिर्फ़ उसकी खोई हुई साख वापस दिलाई, बल्कि आकाशवाणी के श्रोताओं में नई रुचि पैदा की और उनमें हलके-फुलके प्रोग्रामों द्वारा राष्ट्रीयता और देशप्रेम का अहसास जगाया और आगे चलकर यह कार्यक्रम आकाशवाणी के लिए 'लक्ष्मी का अवतार' साबित हुआ।" (रिफ़अत सरोश, *शेष-अशेष*, पृष्ठ 243)

जैसा कि कहा गया नरेन्द्र जी नामकरण से लेकर–'विविधभारती' के स्वरूप निर्धारित करने और उसके निर्माण के संपूर्ण सूत्रधार बने। इस कार्यक्रम को संपन्न करने के लिए इन्हें अथक परिश्रम करना पड़ा। इन्होंने पुराने फ़िल्मी और गै़र फ़िल्मी गीतों को एक-एक करके सुना। इसमें से सिर्फ दस प्रतिशत गीत ही काम में आते थे, शेष व्यर्थ। इन गीतों पर इतना अधिक परिश्रम किया कि नरेन्द्र जी बीमार पड़ गए। मगर इन्होंने अच्छे-अच्छे गीत पसंद किए। विख्यात संगीत-निर्देशकों ने उन्हें संगीतबद्ध किया था। चोटी के गीतकारों से उन्हें गवाया गया। यह अपने आप में अनूठा कार्यक्रम बना। 'विविधभारती' कार्यक्रम इतना लोकप्रिय हुआ कि रेडियो सीलोन की छवि धूमिल होने लगी। आप थोड़े समय में ही 'विविधभारती' के चीफ़ प्रोड्यूसर बना दिए गए। इसमें अनेक प्रयोग करते हुए ग़ज़लों और गीतों का मिलाजुला कार्यक्रम 'गज़रा' बनाया गया और उसे 'हलकी-फुलकी चटाखेदार हिन्दुस्तानी ज़बान की कंपेयरिंग में पिरोया'। इस प्रकार

के पंचरंगी प्रोग्राम लोगों को बहुत पसंद आए। उनकी यह यूनिट एकजुट होकर काम करती थी। भाषा के विषय में अवश्य मतवैभिन्न्य रहता था। नरेन्द्र जी की मान्यता थी कि ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जो संस्कृत के निकट हो क्योंकि वही देश के विभिन्न हिस्सों में सर्वाधिक समझी जाएगी। 'विविधभारती' का नामकरण इसी की पुष्टि करता है। 'विविधभारती' के अतिरिक्त 'पत्रावली', 'बंदनवार', 'मंजूषा', 'स्वरसंगम', 'रत्नाकर' आदि भी ऐसे ही नाम हैं, जो तत्सम प्रधान हैं।

दूसरे, आकाशवाणी की पुरानी मान्यताओं और सरकारी तंत्र के तले दबे रेडियो के ख़िलाफ़ उनमें रोष था जिसे सुधारने के लिए ये अपने स्तर पर कार्य करते रहते थे। अन्य सुधार करने वालों को प्रोत्साहित भी करते थे। अमीन सयानी का वक्तव्य इसका प्रमाण है : "आकाशवाणी से पुराने जाले हटाकर उनमें नया उत्साह जगाने की मेरी बेताबी पंडित जी ने देखी। परिवर्तन की राहों पर हठधर्मी की दीवारों से मेरा टकराना देखा और देखकर मुस्कराए। और कहा....रुको नहीं, डिगो नहीं। जो तुम लोग कर रहे हो, सब उचित है। इसे अपना मिशन समझकर बस लगे रहो। एक न एक दिन तुम्हारी बातें सच साबित होंगी और स्वीकार भी कर ली जाएँगी।"

1953 ई. से 1971–सेवा-निवृत्ति तक नरेन्द्र शर्मा ने एकाग्रचित्त और पूरे मनोयोग से आकाशवाणी की सेवा की। हालाँकि इन्हें फ़िल्मों में गीत लिखने की अनुमति प्राप्त थी। पर इन्होंने आकाशवाणी के सेवाकाल में फ़िल्मों में गीत नहीं लिखे। इनके इसी महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण इन्हें प्रोड्यूसर-एमेरिटस बनाया गया, परन्तु ये निर्लिप्त भाव से अपने काम में संलग्न रहे।

× × ×

धारावाहिक 'महाभारत'

जीवन के उत्तरार्द्ध में नरेन्द्र शर्मा भारतीय संस्कृति, स्वदेश-प्रेम और लोकजीवन में पैठी अध्यात्म चेतना से युक्त होते चले गए। उन्होंने संस्कृति की रूढ़ि को त्याग उसके जीवंत पक्षों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य अपने अप्रतिम धारावाहिक 'महाभारत' द्वारा किया। भारत की गौरवशाली परंपरा, उसके गौरव ग्रंथ *रामायण*, *महाभारत* में तो वे रच-बस ही गए थे। उन्होंने इन्हें आत्मसात कर लिया था। यह उन्होंने किसी उद्देश्य विशेष या उसे व्यवसाय बनाने के लिए नहीं किया था। बल्कि भारत की सदियों पुरानी आत्मा इन ग्रंथों में बसती है। अतः भारतीय लोक-जीवन को समझने-बूझने के लिए इन्हें जानना प्रत्येक भारतीय के लिए बहुत ज़रूरी है। इन्हें ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने ज्योतिष के विभिन्न शास्त्रों में पैठकर इस विद्या में अच्छी महारत हासिल कर ली थी। इससे भी इनकी ख्याति बढ़ी थी। बहुत

से लोग इनसे कुंडली जँचवाने आते। परन्तु इसे इन्होंने कभी अपना व्यवसाय नहीं बनाया। यह इनकी आय का साधन कभी नहीं बना। सिवाय इसके कि कवि नरेन्द्र शर्मा–अब पंडित नरेन्द्र शर्मा के रूप में विख्यात होने लगे। इन्हें पुराने पंडितों की तरह वैद्यक का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। वे बीमारी के अनुसार अनेक नुस्खे बाँध देते थे जो प्राय: लाभदायक होते थे। यह सब इनके अपने ज्ञान को बाँटने, दूसरे को लाभ पहुँचाने का अपना तरीक़ा था। लोक में व्याप्त *मानस* का पाठ तो ये नियमित करते थे। कभी-कभी सारी रात उसे पढ़ते और भाव-विह्वल हो रोते जाते। बंबई आने के बाद तो एक मानस-गोष्ठी बन गई थी जिसमें इनके अनेक इष्ट-मित्र इकट्ठा होते। पाठ होता। नरेन्द्र जी गहन-गूढ़ अर्थ समझाते। सालों-साल यह सिलसिला चलता रहा। इसी गोष्ठी में 'दूरदर्शन' पर 'रामायण' धारावाहिक के प्रस्तुतकर्त्ता श्री रामानंद सागर आया करते थे। उन्होंने लिखा है : "मैं *रामायण* को जितना थोड़ा-बहुत समझ पाया हूँ, वह अंतरंग (गोष्ठी) में बैठ-बैठकर पं. नरेन्द्र जी जैसे दिग्गज विद्वानों की बातें सुन-सुनकर ही समझ पाया हूँ।" (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 238) ये ग्रंथ भारतीय साहित्य और संस्कृति के अक्षय स्रोत हैं जिनमें रमना ये अपना धर्म समझते थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के विघटित जीवन-मूल्यों के बीच ये दु:खी होकर इसे अपने देश की नियति मान अपने ईश्वर विशेषत: राम और कृष्ण के प्रति समर्पित हो जाते। किन्तु आत्मसम्मान इतना कि अपने प्रभु के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं समर्पण नहीं। चाहे कितने अभाव या कष्ट में हों–कभी दीनता नहीं। जैसा कि कहा गया *रामायण* और *महाभारत* उनके प्रिय ग्रंथ रहे। यही कारण है कि इनके सभी प्रबंधकाव्य किसी-न-किसी प्रकार *महाभारत* से जुड़े हुए मिलते हैं। उक्त प्रबंध काव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि कवि नरेन्द्र शर्मा *महाभारत* की कथा, उसके पात्रों की मिथकीय अवधारणा, उनके मानव सुलभ गुण-दोष, उनकी दार्शनिकता में गहरे धँसे हुए थे। इसी का एक अन्य प्रमाण है : बी.आर. चोपड़ा कृत दूरदर्शन धारावाहिक 'महाभारत'। पं. नरेन्द्र शर्मा इस लोकप्रिय 'महाभारत' धारावाहिक के कब मुख्य प्रेरणास्रोत बन गए–किसी को पता ही नहीं चला। यह यों ही नहीं हो गया। इसके पीछे छिपा था उनका *महाभारत* संबंधी ज्ञान। यह ज्ञान सामग्री इन्हें अनायास ही नहीं मिल गई थी। अनेक प्राचीन जानकारियों के अतिरिक्त इन्होंने उस पर शोध करने के लिए परिश्रम किया। ये प्राचीन ज्ञान के अप्रतिम संग्रहालय–पुणे स्थित भांडारकर संस्थान गए। व्यासकृत *महाभारत* के अतिरिक्त अन्य सूत्रों आदि का अध्ययन-मनन किया। सारी सामग्री को जाँचा-परखा। तब ये उसे उपयोग में लाए। ये इस कथा में इतने तन्मय हो जाते कि 'महाभारत' धारावाहिक के कलाकारों के समक्ष कुछ ऐसे व्यवहार करते कि सब-कुछ उनके सामने ही घटित हो रहा हो। *महाभारत* धारावाहिक के भीष्म

पितामह बनने वाले कलाकार ने अपने एक संस्मरण में लिखा है : "जिस तरह द्वापर युग के भीष्म को धर्म का पूरा ज्ञान था, वैसे ही पंडित जी को महाभारत का पूरा ज्ञान था। 'महाभारत' बनाने का कोई क़दम उनसे पूछे बगैर नहीं उठाया जाता था। टीका कैसा होना चाहिए (किसी किरदार के माथे पर) इस छोटी-सी बात से लेकर आयु, रूप-रंग, वेशभूषा–ये सभी बातें पंडित जी ऐसे बताते थे जैसे वे वहाँ मौजूद थे।" (मुकेश खन्ना, *शेष-अशेष*, पृष्ठ 225)

किसी धारावाहिक के लिए दृश्य-संरचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। नरेन्द्र शर्मा 'महाभारत' की जो दृश्य-संरचना करते थे–उसे इतने भाव-विभोर होकर सुनाते कि धारावाहिक के सभी कलाकार मंत्र-मुग्ध हो इनके प्रत्येक हाव-भाव को नोट करते चले जाते। 'हमारे भीष्म पितामह' लेख में मुकेश खन्ना ने लिखा है : "जब 'महाभारत' की स्टोरी सिटिंग में पंडित जी 'महाभारत' का कोई दृश्य सुनाते हैं तो वो अक्सर इतने तन्मय हो जाते कि खड़े होकर सुनाने लगते। 'तब श्रीकृष्ण चाबुक लेकर दौड़े' ऐसे लगता है जैसे वो खुद *महाभारत* के मैदान में हों। इतना सजीव चित्रण करते हैं कि हम सबके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वो जो कुछ कहते हैं, उनके एक-एक शब्द क़ीमती होते हैं और कुछ छूट न जाए इसका हमने उपाय किया है। एक छोटा टेपरिकार्डर रख दिया जाता है और उनके हर शब्द रिकॉर्ड कर लिए जाते हैं।" (वही, पृष्ठ 225-226)

कथा या दृश्य-संरचना ही नहीं उन्होंने धारावाहिक के प्रत्येक पात्र को उस युग में जीते हुए उसके सारे गुणों-अवगुणों के साथ अपनी आँखों के सामने साक्षात् कर लिया था। इसीलिए ये प्रत्येक पात्र के मर्म तक सहज ही पहुँच जाते थे और अपनी अनूठी कथा शैली से धारावाहिक के कलाकारों को पात्रों की आत्मा के दर्शन करा देते थे। यही कारण है कि 'महाभारत' का प्रत्येक कलाकार इनसे मिलकर एक बार अपना किरदार जान लेना ज़रूरी समझता था। 'महाभारत' धारावाहिक के नरेन्द्र जी द्वारा लिखे गीत तो श्लोक का काम करते थे जिससे वातावरण अपनी दैनंदिनी या रोज़मर्रापन से कटकर उदात्तता और पवित्रता के उच्च स्तर पर पहुँच जाता था :

राजकुमारों को निरख, हर्षित जन समुदाय।
आज हस्तिनापुर नगर, फूला नहीं समाय।।

अथवा शंख-ध्वनि के साथ गाया जाने वाला यह दोहा किसे स्मरण नहीं होगा :

शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत।
अंत यही, ले जाएगा कुरुक्षेत्र पर्यन्त ।।

इस धारावाहिक का स्मरण करते हुए प्रसिद्ध कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने लिखा है : "विगत वर्ष जब 'महाभारत' का सीरियल प्रारंभ हुआ, तो पटकथा-लेखक और गीत-रचनाकार के रूप में उनका नाम देखकर मैं पुलकित हो उठा था। वे शब्द-ब्रह्म के साधक और संवेदन तत्त्व के अनन्य पारखी थे। आज भी 'महाभारत' के मंगलाचरण को मंत्र की गरिमा प्रदान करने वाला शब्द 'दिग्घोषित हुआ .....' का उद्घोष दिगदिगंत को प्रतिध्वनित करता और शब्दों को सार्थक करता प्रतीत होता है। उनके दोहों की अर्थगर्भिता और मार्मिकता तो कहानी बनकर रह गई है।" (वही, पृष्ठ 86-87)

इतने कठिन परिश्रम के बावजूद पं. नरेन्द्र शर्मा ने कम पैसा या कम यश मिलने की शिकायत या व्यग्रता कभी नहीं दिखाई। हमेशा इसे दायित्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य माना। कभी इसे अपनी सफलता के रूप में नहीं देखा। इनसे धारावाहिक के विषय में पूछे जाने पर इन्होंने हमेशा यही कहा "महाभारत की संपूर्ण पटकथा के गुंफन को सजीव एवं प्रभावशाली दृश्यावलियों की संरचना द्वारा तथा पात्रों के कुशल अभिनय एवं संवाद रचना में पात्रगत चरित्र को उद्घाटित करने की अद्भुत सामर्थ्य के कारण हम सामान्य जन मानस के विश्वास को प्राप्त करने में सफल हो सके हैं।" (वही, पृष्ठ 135) सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित करने वाले धारावाहिक 'महाभारत' के पीछे नरेन्द्र शर्मा का श्रम और प्रेरणा रही है जो प्रकट में प्राय: अलक्षित रह जाती है।

जैसा कि पीछे कहा गया *महाभारत* के समान *रामायण* या *रामचरितमानस* भी नरेन्द्र शर्मा के प्रिय ग्रंथ रहे हैं। जीवन के उत्तरार्द्ध में ये रामकथा से संबंधित काव्य-रचना करने में संलग्न थे। यह उन्होंने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया था। (*शेष-अशेष*, पृष्ठ 199) भरत के चरित्र को केन्द्र बनाकर उन्होंने कुछ काव्य-रचना की थी जो अप्रकाशित है। प्रभु राम और कृष्ण इनके आराध्य देव थे। इनसे संबंधित इनके अनेक भजन गीत-संगीतकारों के मध्य अपनी संगीतात्मकता के कारण अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं । कुछ प्रसिद्ध कंपनियों ने इन्हें प्रस्तुत भी किया है। आकाशवाणी-दूरदर्शन पर इन्हें अकस्मात् सुना भी जा सकता है।

प्रसिद्ध कंपनी एच.एम.वी. ने तुलसीकृत रामायण को एल. पी. रिकार्डों पर भी प्रस्तुत किया है जिसे मुकेश, मन्ना डे जैसे गायकों ने अपना स्वर प्रदान किया है। इसके संगीत-निर्देशक थे-श्री मुरली मनोहर स्वरूप तथा इसके लिए सामग्री-संकलन संपादन का कार्य किया था पं. नरेन्द्र शर्मा ने। नरेन्द्र जी ने *मानस* से कुछ इस प्रकार दोहे-चौपाइयों को एकत्रित किया कि रामकथा का प्रारंभ से अंत तक कथा-सूत्र भी सँभला रहा और सुनते हुए यह भी प्रतीत नहीं हुआ कि रामकथा का कोई प्रमुख प्रसंग छूट गया है। समय-समय पर एक-एक कांड के रिकार्ड श्रोताओं तक पहुँचते रहे। इसमें सात वर्ष का समय लगा। "इन सात वर्षों

में हर कांड का संकलन करके, रिकार्डिंग के हर दिन पं. चंद्रशेखर पांडे के साथ नरेन्द्र स्टूडियो में आठ-दस घंटे बैठते। मुकेश जी के एक-एक शब्द को, एक-एक स्वर को आँखें मूँदे सुनते, त्रुटियाँ सुधारते।" (वही, पृष्ठ 272) इसी प्रकार 'सुंदर कांड' भी एक ग्रामोफ़ोन कंपनी ने उनके निर्देशन में रिकार्ड करवाई।

इस प्रकार के कार्य नरेन्द्र शर्मा के लिए आय के साधन के साथ निष्ठा से अधिक जुड़े हुए थे। इन्होंने इन्हें प्रसिद्धि प्रदान की। ये करोड़ों की संख्या में बिके पर व्यावहारिक बुद्धि न होने के कारण इन बारह रिकार्डों से इनका कुछ आर्थिक हित-संपादन नहीं हुआ। उनके भजनों को पं॰ भीमसेन जोशी, सुश्री लता मंगेशकर आदि अनेक गायकों ने गाया है। नरेन्द्र जी ने मध्य युग के अनेक कवियों रहीम, देव, रसखान आदि की कविताओं का संकलन करके अनेक संगीतकारों को दिया। इन्हें किस प्रकार स्वरबद्ध करना चाहिए—यह भी बताया। संगीत की दुनिया में इनके ये कार्य भी महत्त्वपूर्ण बने हुए हैं। ☐

7

उपसंहार

नरेन्द्र छायावादोत्तर काल या छायावाद के तुरंत बाद आने वाले कवियों में प्रमुख हैं। इनकी लगभग साठ वर्षों की लंबी काव्ययात्रा नारी, प्रकृति, वैयक्तिकता-सामाजिकता, दर्शन और अध्यात्म के क्षितिजों का स्पर्श करती हुई छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की काव्य-संवेदना के सर्वाधिक निकट दिखाई देती है। वैसे भी इनके प्रारंभिक गीत और कविताएँ छायावाद की काव्यानुभूति से प्रभावित और पोषित हैं। पर शीघ्र ही इनकी कविता का स्वर छायावाद से भिन्न हो अपना मुहावरा गढ़ने लगता है। भले ही छायावादी कविता के समान प्रेम, सौन्दर्य और संवेदना की सूक्ष्मता इनके यहाँ भी आई हो परंतु अगोचर तत्त्वों को गोचर रूप में पाने का आग्रह इनके यहाँ बढ़ता चला जाता है। कवि ने स्वयं कहा है—"विदेह को संदेह में देखना उसे बाहुपाश में बाँध लेना चाहता था। इस उद्देश्य से मैं अपनी भावधारा में ख़ूब डूबा और उतराया हूँ और थककर कभी-कभी तटस्थ भी हुआ हूँ।" यह तटस्थता कवि नरेन्द्र शर्मा में थोड़ी बाद में आती है। प्रारंभ में तो भावनात्मक आवेग युक्त गीत ही अधिक मिलते हैं। इनमें नारी सौन्दर्य और उसके सुकुमार वैभव का चित्रण बहुलता के साथ हुआ है। साथ ही, प्रेमी मन की प्यास, उत्कंठा, लालसा, अतृप्ति, निराशा और अवसाद के चित्र भी पर्याप्त मात्रा में आए हैं। *प्रवासी के गीत* और *पलाशवन* काव्य-संग्रहों के गीत इसके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

दरअसल, नवशिक्षित मध्यवर्ग के ये युवा कवि छायावाद से प्रेरणा लेते हुए भी उन काव्य-प्रतिमानों के अनुरूप कविता नहीं लिख पा रहे थे। ये अपनी इच्छाओं-कामनाओं को सीधी अभिव्यक्ति देना श्रेयस्कर समझते थे। किन्तु सामाजिक मर्यादाओं की जकड़बंदी में विवश हो प्रत्युत्तर न मिलने पर आकुलता का अनुभव कर रहे थे। फिर बाहर, स्वातंत्र्य-आंदोलन में भी अपेक्षित सफलता नहीं मिल रही थी। ऐसे में इन कवियों के अंदर तनाव, अवसाद और निराशा पैदा होने लगी। प्रिया से मिलन की आशा धूमिल पाकर ये लगभग चीत्कार करते हुए लिखता है :

यदि मुझे उस पार में भी
मिलन का विश्वास होता
सत्य कहता हूँ
न मैं असहाय व निरुपाय होता।

नरेन्द्र शर्मा आदि उत्तरछायावादी कवि अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी के कवियों से इस रूप में भी भिन्न दिखाई देते हैं कि प्रसाद, निराला, पंत की प्रेम कविताओं में मर्यादा और संकोच का आवरण हमेशा रहा है परंतु इन कवियों ने खुली अभिव्यक्ति के द्वार खोले। नरेन्द्र शर्मा के गीतों से प्रतीत होता है मानो इनका प्रिय इनके सामने मौजूद हो और ये अपना दुःख-दर्द उससे कहना चाहते हों। छायावादी कवियों के समान इनका भी अपना एक कल्पित संसार था। प्रिय-प्रिया के इर्द-गिर्द घूमता हुआ। इनका बाहरी जीवन-जगत से अधिक सरोकार नहीं था। परंतु नरेन्द्र अपने शारीरिक एवं ऐन्द्रिय आकर्षण की अभिव्यक्ति जितने निःसंकोच भाव से करते तथा निराशा और अवसाद के चित्र खींचते थे—वे पाठकों—श्रोताओं पर जादू का काम करते थे। '*आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे*' या '*चिर विरह की इस अमा में, मैं शमा बन जल रहा हूँ*' जैसी मर्मस्पर्शी गीत-पंक्तियाँ प्रत्येक पाठक की जबान पर होती थीं।

प्रवासी के गीत की कुछ कविताओं में कवि अपने से थोड़ा बाहर निकल प्रकृति को भी अपने भाव-संसार में शामिल कर लेता। अब वह जीवन से नया समझौता करने की चेष्टा करता है। *पलाशवन* की अनेक कविताओं में पलाश, चाँदनी, पर्वत, नदी, झरने, कुमुद, नीम आदि का निखरा हुआ रूप देखा जा सकता है :

यह खुला नभ, यह धुला नभ,
खिल रही यह चाँदनी अनमोल
यह अमृत की वृष्टि, खिलती
कुमुदिनी-सी सृष्टि दृग-उर खोल।

कवि प्रकृति की शीतल स्नेह-छाया में अपनी बेचैनी से शांति का अनुभव करता है। यह प्रकृति अब छायावादी कवियों के समान उनके कौतूहल और जिज्ञासा को जन्म नहीं देती। बल्कि एक भावबोध जाग्रत करती है, एक आत्मीय स्पंदन प्रदान करती है। प्रकृति मानवीय भावों के साथ सजीव हो उठती है :

मैं उठा, उठा वह, जिधर चला,
मेरे संग-संग चल दिया चाँद
मैं गीतों में वह ओसों में
बरसा औ रोया किया चाँद!

1940 ई. के आसपास द्वितीय विश्वयुद्ध के तनाव के बीच कवि आत्मबद्ध या आत्मसीमित कैसे रह सकता था? कवि नरेन्द्र शर्मा भी अपने युग परिवेश को वाणी देते हुए अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हैं। *मिट्टी और फूल* की कविताओं में नरेन्द्र अपनी यथार्थवादी दृष्टि की बेलाग अभिव्यक्ति करते हैं। कवि आत्मनिष्ठ प्रसंगों को जीवन और समाज के बृहत्तर संदर्भों से जोड़ने का प्रयास करते हैं। अब इनकी कविता युग-जीवन की ज्वलंत समस्याओं के विस्तृत मैदान में जा पहुँचती है। ये सामान्य जनता के दुःख-दर्द को नज़दीक से देखते हैं। अमीरी-ग़रीबी को निरा भाग्य का खेल नहीं मानते। वे कहते हैं कि यह इसी दुनिया की रचना है। अपनी कविता में वे साफ़-साफ़ बतलाते हैं :

इस दुनिया में दो दुनिया हैं
जिनके नाम गरीब-अमीर
पर सोने के नगर बसे हैं
धरती का ही सीना चीर!

कथनीय है कि यह कवि की महज बौद्धिक सहानुभूति मात्र नहीं है। यह प्रवृत्ति इनके समाज के प्रति कर्तव्य-निर्वाह और निष्ठा से संबंध रखती है। यह इनकी सजग संवेदनशीलता का प्रमाण है। इस दौर में कवि इसे राजनीतिक कार्यक्रम के रूप में ग्रहण करता है। भले ही उसे बंदी क्यों न बना लिया जाए। ये देवली कैम्प जेल में लगभग दो साल बंदी रहते हैं। वहाँ यकुम मई, 'लाल निशान', 'योम सोवियत', 'चीन' जैसी कविताएँ लिखते हैं। सामान्य जनता के लिए इतनी सरल भाषा में राजनीतिक कविता उस समय और कोई नहीं लिख रहा था। प्रगतिशील आलोचकों ने भी नरेन्द्र शर्मा के इस अवदान को स्वीकार किया है। यही नहीं इनकी कुछ यथार्थवादी कहानियाँ भी इसी दौर की हैं। ये तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में इसी प्रकार के लेख लिखते हैं। इस प्रकार प्रगतिवादी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी इन्हें नया काव्य व्यक्तित्व प्रदान करता है।

नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में जहाँ प्रारंभ से व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, वहीं इनमें सामाजिकता की धारा भी निरंतर विद्यमान रही है। यह भी कहा जा सकता है कि नरेन्द्र न पूर्णतः व्यक्तिवादी रहे हैं और न व्यक्तित्व का सर्वथा विलयन कर देने वाले समाजवादी। व्यक्तिवादी और सामाजिक प्रवृत्तियों का द्वंद्व इनकी कविता को विशिष्टता प्रदान करता है। डॉ. रणवीर रांग्रा को दिए साक्षात्कार में इन्होंने स्वीकार भी किया है : "हृदय मेरा प्रेम और सौन्दर्य को अर्पित रहा है और बुद्धि समाज की सेवा के लिए लालायित रही है। ....व्यक्तिगत रूप में मेरा जो प्रेय है, वह भी समाज सापेक्ष श्रेय पर सौ बार निछावर है।"

यही कारण है कि नरेन्द्र शर्मा की परवर्ती कविताओं में प्रेम और सौन्दर्य की अपेक्षा शेष संसार से जुड़ने की चाह अधिक दिखाई देती है। यही उसे समाज और राष्ट्र-प्रेम से संबंधित घटनाओं पर कविता लिखने के लिए प्रेरित करती है। कवि

वीर सुभाष और गाँधी जी पर कविताएँ लिखता है। साथ ही, जीवन में शाश्वत प्रश्नों को भी अपनी कविता में उठाता है। कुछ आलोचक मानते हैं कि स्वाधीनता के आसपास इनकी कविता में आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति अधिक आ जाती है। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए नरेन्द्र शर्मा कहते हैं : "स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम चरण में हमारे सारे आदर्श टूटते चले गए। फिर 1948 में गाँधी जी की हत्या हुई तो मुझे लगा कि मानव मूल्यों के मूल की ओर जाना है। मेरी कविता में तथाकथित अध्यात्म और नवरहस्यवाद यहीं से शुरू होता है।" यहाँ अध्यात्म या रहस्यवाद को 'तथाकथित' विशेषण से इसीलिए युक्त किया गया है क्योंकि नरेन्द्र शर्मा ने अपने अग्रज कवि पंत जी की तरह अरविन्दवादी या किसी अन्य सुनिश्चित भाववादी दर्शन से प्रेरित होकर अपनी कविताएँ नहीं लिखीं। इतना अवश्य हुआ कि अब इन्होंने राजनीतिक कविताएँ लिखना बंद कर दिया। संभवतः अब इन्हें राजनीति से कोई आशा नहीं रह गई थी। अव इनकी कविता के केंद्र में सामान्य जनता, उसके दुःख-दर्द, उसका दुर्भाग्य अधिक आने लगता है। वह ईश्वर की ओर झुकता चला जाता है। इनके सरोकार अधिकाधिक मानववादी होते चले जाते हैं। इन्हें सैद्धांतिक संकीर्णताएँ किसी काम की नहीं लगतीं। *हंसमाला* की प्रस्तावना में नरेन्द्र लिखते हैं : "मुझे आज भौतिक चिन्तन एकांगी लगता है, जैसा कि वर्गवाद के संबंध में भी ऊपर कहा जा चुका है। हमें अपने जीवन-दर्शन को अधिक मानवीय और व्यापक बनाना होगा, जिसमें भौतिक प्रसार तथा चेतना की गहराई, दोनों ही तत्त्व विद्यमान हों, जिसमें प्रगतिपक्ष की ओर से नवीन के निर्माण के हित तत्परता हो और परंपराओं को समझने और अपनाने की सामर्थ्य और शक्ति भी।"

अपने अंतिम काव्य-संग्रहों की कविताओं में नरेन्द्र शर्मा अपनी संस्कृति, अपनी परंपराओं से अधिकाधिक जुड़ते हैं, चेतन-अचेतन की चर्चा करते हैं, अज्ञात-अलौकिक शक्ति तथा आत्मा-परमात्मा के संबंधों की गहराई को अपनी कविता में व्यक्त करने लगते हैं। घोर स्वार्थी संसार से निराश कवि ईश्वर के प्रति समर्पित हो उसकी कृपा का आकांक्षी होता चला जाता है। वह धरा को वर्तमान और गगन को भविष्य मानता हुआ कहता है कि धरा दुःखी है और गगन सुख देने वाला। शायद यह कवि का रोष हो या उसकी निराशा से निकला आत्मचिन्तन। इनकी कविता में सांकेतिकता-प्रतीकात्मकता की वृद्धि हो जाती है। भाववादी विचार कवि पर हावी होने लगते हैं तथा लौकिक अनुभूति थोड़ा ताप रहित होती दिखाई देने लगती है। कवि आराधक के स्वर में कहने लगता है :

मेरी यों ही कट जाएगी, कट जाएँगे सब शाप-ताप।
जो सदा अकारण करुणामय, मेरे रक्षक हैं राम आप।

वस्तुतः नरेन्द्र शर्मा की यह कविता घोर स्वार्थी संसार से टकराकर, अभाव और कष्टों को झेलते हुए अपना यह स्वरूप ग्रहण करती है। घोर निराशा के कारण प्रतिशोध की भावना भी इन्हें उद्दीप्त कर देती है। आध्यात्मिक चिन्तन, आस्था और विवेक ने इन्हें इन सब भावों से जूझने की शक्ति प्रदान की है। ऊपर उठना सिखाया है। यहाँ भी ये अपने आसपास के दीन-दुखी-ग़रीब के कष्टों को नहीं भूले हैं। ये प्रौढ़ कवि की जिम्मेदारी सँभालते हुए कहते हैं :

तू नए सत्य के लिए नित्य कर मन-मंथन।
ओ मेरे स्वर! तू आगत की अनुगूँज न बन।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद जब सारे सपने टूट जाते हैं, समाज में विषमता की खाई बढ़ती जाती है, ग़रीब की ओर कोई देखने वाला नहीं मिलता तब कवि सामयिकता से ऊपर उठकर चिरंतन मूल्यों में रम जाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझने लगता है। उसके *महाभारत* की कथा से जुड़े प्रबंध काव्यों में भी इसी ऊर्जा का प्रसार दिखाई देता है। ये प्रबंध काव्य भी नरेन्द्र शर्मा ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में ही लिखे हैं। चाहे वह *द्रौपदी* हो या *सुवर्णा*–सर्वत्र उदात्तता को मूल्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास दिखाई देता है। जैसा कि कहा गया है कि मूल्यों का संरक्षण अब कवि अपना लक्ष्य बना लेता है। *उत्तरजय* प्रबंध काव्य में अश्वत्थामा का उत्पीड़न के प्रतिशोधस्वरूप पीड़ा का वरण करना इसी मान्यता की पुष्टि करता है। कवि कहता भी है कि पुराने मूल्यों को तोड़ने वाले मूल्य-निर्माण की अनिवार्यता भले ही न स्वीकारें पर आज युग को पुराने मूल्यों की स्थापना की ही अधिक आवश्यकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सिर्फ़ पुराने मूल्य ही पर्याप्त नहीं हैं। पुराने मूल्यों के साथ नए मूल्यों का समाहार स्वस्थ जीवन दृष्टि का परिचायक होता है।

गीत-शिल्प की दृष्टि से देखें तो नरेन्द्र शर्मा का गीतकार रूप जितना सहज है उतना अन्य कोई रूप नहीं। यही कारण है कि उनके प्रबंध काव्यों में भी गीतात्मकता की अनुगूँज मिलती है। गीतात्मक अनुभूति के ताप में उनकी भाषाशैली गलकर एक सुथरी ऊष्मा से भरा रूप ग्रहण कर लेती है जो जीवन के जटिल-संश्लिष्ट भाव-विचारों को भी सरल छंदोबद्ध भाषा-शैली में प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता रखती है। ब्रजभाषा क्षेत्र के निवासी होने के कारण नरेन्द्र शर्मा के गीतों और गद्य की भाषा-शैली में व्यावहारिकता, मिठास और कोमलता का सहज ही प्रवेश होता दिखाई देता है। दूसरे, चाहे नरेन्द्र शर्मा की परवर्ती कविता हो या फ़िल्मी गीत–इनमें कहीं भी दिखावटी या हल्के स्तर की गीत भाषा के दर्शन नहीं होते।

इस प्रकार नरेन्द्र शर्मा की कविता का अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि इनकी कविता को किसी एक वर्ग या खाँचे–प्रगतिवाद,

अध्यात्मवाद–में रखकर देखना इनके साथ अन्याय करना होगा। नरेन्द्र शर्मा की इस लंबी काव्ययात्रा को किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इनकी कविता अनेक प्रकार की बेचैनियों से भरी हुई कविता है। उसमें अनेक प्रकार के द्वंद्व हैं। इनकी कविता के विषय में श्री बालकृष्ण राव ने उचित ही कहा है : "नरेन्द्र की कविता का सही मूल्यांकन करने के लिए आधिभौतिक के साथ आधिदैविक, लौकिक के साथ अलौकिक, ज्ञात के साथ अज्ञात, वास्तविकता के साथ रूमानी के प्रति उनकी आस्था और आकर्षण को समझना और स्वीकार करना आवश्यक है। विशुद्ध प्रगतिवादी कवियों से नरेन्द्र को अलग करता है उनका व्यक्ति के प्रति और आधिदैविक प्रेरणा स्रोतों के प्रति सहज आकर्षण, पर उनकी प्रबल सामाजिक चेतना उन्हें एकांत व्यक्तिवादी अथवा भावुक रूमानी कवियों से भी उतनी ही दूर पहुँचा देती है।" इसलिए नरेन्द्र शर्मा जिस साँस में आकुल अंतर के प्रेम की कविता लिखते हैं–उसी साँस में राजनीतिक या अध्यात्म-प्रेरित कविताएँ भी लिख लेते हैं। इनकी दृष्टि में यही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक-यथार्थ चेतना संपन्न समग्र जीवन है। इसे इन्होंने यथाशक्य अपने गीतों-कविताओं, प्रबंधकाव्यों, कहानियों, फ़िल्मों, धारावाहिक में सर्वत्र वाणी दी है। इनमें मानव जीवन के प्रति निष्ठा और अनुभूति की गहराई प्राय: सब जगह पाई जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सबका प्रभाव परवर्ती हिन्दी कविता पर भी पड़ा है। यही कवि नरेन्द्र शर्मा की उपलब्धि है। □

संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म : 28 फ़रवरी, 1913 ई. जहाँगीरपुर, तहसील खुरजा, जिला बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

माता : श्रीमती गंगादेवी।

पिता : पं. पूरनलाल, गाँव के पटवारी।

परिवार : संयुक्त परिवार। पहली माँ से दो बहनें और एक भाई। भाई की 1945 ई. में मृत्यु! एक सहोदरा बहन—बाल्यकाल में ही दिवंगत। आर्यसमाजी परिवार।
घर में आने वाले पत्र *प्रताप* से काव्य-संस्कार मिले।
चार वर्ष की उम्र में पिता की मृत्यु—सन् 1917 ई. में।

विवाह : 12 मई, 1947 ई. को श्रीमती सुशीला गोदीवाला से, बंबई में।

संतान : वासवी बकुल मोदी (बच्चे : मौलिक-शौनक)
लावण्या दीपक शाह (बच्चे : सिंदूर-सोपान)
बांधवी दिलीप काथरानी (बच्चे : कुंजम-दीपम)
परितोष—अविवाहित। गीत-संगीत की दुनिया में संलग्न।

शिक्षा : अक्षर-ज्ञान परिवार में ही। प्रारंभिक पुस्तक *बाल सत्यार्थ प्रकाश*।
प्राथमिक शिक्षा गाँव की पाठशाला से उत्तीर्ण।
गाँव में ही अंग्रेज़ी पढ़ना प्रारंभ।
हाईस्कूल-1929 ई. में जे. ए. एस. हाईस्कूल, खुर्जा से।
इंटरमीडिएट-1931 ई. में एन. आर. ई. सी. कॉलेज, खुर्जा से।
उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1931-36 ई.। अंग्रेज़ी में एम. ए.।

आजीविका : 18 वर्ष आकाशवाणी में कार्य; फ़िल्मों में गीत-लेखन तथा धारावाहिक में पटकथा और गीत-लेखन।

प्रभाव : जे. ए. एस. हाईस्कूल के प्रधानाचार्य श्री लक्ष्मीनारायण माथुर (प्रसिद्ध नाटककार जगदीशचंद्र माथुर के पिता) से समाज-सुधार और भावनात्मक आदर्शवाद की प्रेरणा ली।
हाईस्कूल के दौरान नौजवान भारत सभा, खुर्जा के मंत्री बने। भगतसिंह भी नौजवान भारत सभा के सदस्य थे।

इंटरमीडिएट में अपने अंग्रेज़ी अध्यापक श्री महेशप्रसाद शुक्ल से पंत की रचनाएँ प्राप्त। काव्यरचना की ओर रुझान।
इलाहाबाद में अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध विद्वान प्रो. अमरनाथ झा ने पहली काव्य-पुस्तक *शूलफूल* की भूमिका लिखी।

जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

1929 ई. में नौजवान भारत सभा, खुर्जा के मंत्री।
1930 ई. के लगभग काव्य-रचना प्रारंभ।
1935 ई. में प्रगतिशील काव्यांदोलन में सहयोग।
1941-42 ई. में जेल यात्रा।
1943 ई. में फ़िल्मों में गीत-लेखन के लिए बंबई गए।
1947 ई. में विवाह संपन्न।
1948 ई. के बाद से अध्यात्मोन्मुखता।
1950 ई. *अग्निशस्य* में नई चेतना को वाणी।
1953 ई. में आकाशवाणी से जुड़े।
1957 ई. में सांस्कृतिक सद्‌भावना मिशन के अंतर्गत नेपाल यात्रा का नेतृत्व।
1959 ई. में अमरीका यात्रा। बाद में रूस की यात्रा।
1971 ई. में सेवानिवृत्त।

कार्य क्षेत्र

1934 ई. में *अभ्युदय* (प्रयाग) के संपादकीय विभाग में।
1937 ई. में *भारत* (लीडर प्रेस, प्रयाग) के उपसंपादक।
1938 ई. में *रूपाभ* (सं. सुमित्रानंदन पंत) के उपसंपादक।
1938-40 ई. अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी, स्वराज भवन, इलाहाबाद में हिन्दी का कार्य; पं. जवाहरलाल नेहरू के हिन्दी सचिव।
1941 ई. में काशी विद्यापीठ, काशी में अध्यापन।
1940-42 ई. में राजनीतिक कार्य तथा जेल जीवन।
1943 ई. में नागर जी तथा भगवतीचरण वर्मा के साथ बंबई में गीत-लेखन।
1943 ई. में बंबई से *नया साहित्य* पत्र का संपादन।
1953 ई. में आकाशवाणी से जुड़े। 1955 ई. में मुख्य निदेशक बने और 1971 ई. सेवा निवृत्ति तक कार्य किया।

मृत्यु : 11 फ़रवरी, 1989 ई. को हृदयगति रुक जाने से बंबई में।
सम्मान : उत्तर प्रदेश संस्थान का 1982 ई. का कविवर पुरस्कार।

फ़िल्म-धारावाहिक

1943 ई. में बांबे टाकीज़ में गीत-लेखन का प्रारंभ 'हमारी बात' फ़िल्म से।

1953 ई. तक राजकमल, मिनर्वा, प्रभात जैसी संस्थाओं के लिए कार्य।

1953 ई. से 1971 ई. तक आकाशवाणी में 'विविधभारती' जैसे लोकप्रिय कार्यक्रम के जनक बने।

प्रसिद्ध दूरदर्शन धारावाहिक 'महाभारत' के पटकथा-लेखक और गीतकार।

प्रकाशित रचनाएँ

(प्रारंभिक रचनाएँ 1932-33 ई. में *सरस्वती* तथा चाँद जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित)

कविता-संग्रह	प्रकाशन वर्ष (ई. सन् में)
1. *शूलफूल*	1934
2. *कर्णफूल*	1936
3. *प्रभातफेरी*	1938
4. *प्रवासी के गीत*	1939
5. *पलाशवन*	1940
6. *मिट्टी और फूल*	1942
7. *हंसमाला*	1946
8. *रक्तचंदन*	1949
9. *अग्निशस्य*	1950
10. *कदलीवन*	1953
11. *प्यासा निर्झर*	1964
12. *बहुत रात गए*	1967
13. *मुट्ठी बंद रहस्य*	1979
प्रबंध काव्य	
14. *मनोकामिनी*	1942
15. *द्रौपदी*	1960
16. *उत्तरजय*	1965
17. *सुवर्णा*	1970
18. *सुवीरा*	1972
काव्य-संचयन	
19. *लालनिशान*	1943
20. *आधुनिक कवि*	1963

कहानी-संग्रह

21. *ज्वाला-परचूनी* 1963 (1942 में 'कड़वी-मीठी बात' नाम से. प्रकाशित)
22. *मोहनदास करमचन्द गांधी–एक प्रेरक जीवनी* 1963

भाषण

23. *सांस्कृतिक संक्रांति और संभावना* 1990
(डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भाषणमाला-1987 के अंतर्गत प्रकाशित भाषण)

फ़िल्म

लगभग 55 फ़िल्मों में 650 गीत

धारावाहिक

'महाभारत' की पटकथा-लेखन और गीत-रचना

संदर्भ ग्रंथ

1. *समसामयिक हिन्दी साहित्य*–सं. बच्चन, नगेन्द्र, भारतभूषण अग्रवाल
2. *आज का हिन्दी साहित्य*–प्रकाशचन्द्र गुप्त
3. *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ*–नामवर सिंह
4. *हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास*–विश्वनाथ त्रिपाठी
5. *आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध*–नित्यानंद तिवारी
6. *रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि*–रामविलास शर्मा
7. *कवियों के पत्र*–रामविलास शर्मा
8. *नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण*–दुर्गाशंकर मिश्र
9. *नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य*–लक्ष्मीनारायण शर्मा
10. *उत्तर छायावादी काव्यभाषा*–हरिमोहन शर्मा

कोश-अभिनंदन ग्रंथ

1. *हिन्दी साहित्य कोश*–सं. धीरेन्द्र वर्मा (भाग-1, 2)
2. *हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास*–प्र. सं.–नगेन्द्र (दशम भाग)
3. *ज्योति कलश*–प्र.सं.–आनंद प्रकाश दीक्षित
4. *शेष अशेष*–सं. इंद्रबहादुर सिंह

❑❑❑

नरेन्द्र शर्मा (जन्म : 28 फ़रवरी, 1913; निधन : 11 फ़रवरी, 1989) छायावाद-प्रगतिवाद के संधियुगीन काव्यधारा के अग्रणी कवि हैं। उनकी लगभग साठ वर्षों की लंबी काव्ययात्रा नारी, प्रकृति, वैयक्तिकता-सामाजिकता, दर्शन और अध्यात्म के क्षितिजों का स्पर्श करती है। वे गीति शैली के कवि हैं। गीतात्मक अनुभूति के ताप में उनकी भाषाशैली गलकर एक सुथरी ऊष्मा से भरा रूप ग्रहण कर लेती है, जो जीवन के जटिल-संश्लिष्ट भाव-विचारों को भी सरल छंदोबद्ध भाषा-शैली में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता रखती है। भले ही उनकी आरंभिक कविताओं में छायावादी संस्पर्श हैं, परंतु उत्तरोत्तर उनकी कविता का स्वर भिन्न मुहावरा गढ़ने लगता है। उनकी कविताओं में जहाँ प्रारंभ में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, वहीं इनमें सामाजिकता की धारा भी निरंतर विद्यमान रही है। व्यक्तिवादी और सामाजिक प्रवृत्तियों का द्वंद्व उनकी कविता को विशिष्टता प्रदान करता है।

नरेन्द्र शर्मा की काव्ययात्रा को प्रवृत्ति के आधार पर नहीं समझा जा सकता। उनकी कविता अनेक प्रकार की बेचैनियों से भरी हुई कविता है। वे जिस साँस में आकुल अंतर के प्रेम की कविता लिखते हैं—उसी साँस में राजनीतिक या अध्यात्म-प्रेरित कविताएँ भी लिख लेते हैं। उनकी दृष्टि में यही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक यथार्थचेतना संपन्न समग्र जीवन है। इसे उन्होंने यथाशक्य अपने गीतों-कविताओं, प्रबंध काव्यों, कहानियों, फ़िल्मों, धारावाहिक में सर्वत्र वाणी दी है। उनके रचनाकर्म में मानवजीवन के प्रति निष्ठा और अनुभूति की गहराई प्रायः सब जगह पाई जाती है। इस सबका भाव परवर्ती हिन्दी कविता पर भी पड़ा है और यही कवि नरेन्द्र शर्मा की उपलब्धि है।

अभ्युदय, भारत, रूपाभ और नया साहित्य पत्रिकाओं के संपादन से संबद्ध रहे नरेन्द्र शर्मा की प्रकाशित कृतियों में पाँच प्रबंध काव्य और तेरह कविता-संग्रहों के अलावा दो कहानी-संग्रह शामिल हैं। उन्होंने पचास से भी अधिक हिन्दी फ़िल्मों के लिए गीत-रचना की तथा लोकप्रिय दूरदर्शन धारावाहिक 'महाभारत' के पटकथा-लेखक और गीतकार रहे हैं। आकाशवाणी से अपनी संबद्धता के दौरान उन्होंने लोकप्रिय कार्यक्रम 'विविध भारती' की परिकल्पना की थी। उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के 1982 के कविवर पुरस्कार के अलावा अनेक पुरस्कारों सम्मानों से विभूपित किया गया था।

इस विनिबंध के लेखक डॉ. हरिमोहन शर्मा (जन्म : अप्रैल 1952, बिजनौर उ.प्र.) ने दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. और पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। आप 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से संबद्ध हुए और संप्रति उसके दक्षिण परिसर में रीडर के पद पर कार्यरत हैं। आपने वार्सा विश्वविद्यालय (पोलैंड) के अंतर्गत प्राच्य विद्या संस्थान में अतिथि प्रोफ़ेसर (1990-93) के रूप में भी कार्य किया है। डॉ. शर्मा की प्रकाशित कृतियों में चंद्रशेखर वाजपेयी कृत रसिक विनोद, उत्तर छायावादी काव्यभाषा (आलोचना ग्रंथ), आधुनिक पोलिश कविताएँ, मज़ाक़ (मिलान कुंदेरा के उपन्यास का अनुवाद) तथा साहित्य इतिहास और आधुनिक बोध (संपादित) प्रमुख हैं।

ISBN 81-260-2054-7

मूल्य : पच्चीस रुपये